चतुर्थ अध्याय

"'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ"

चतुर्थ अध्याय

'' 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ ''

विषय-प्रवेश -

साहित्य और समाज का संबंध काफी पुराना है। साहित्य में समाज का यथातथ्य चित्रण किया गया दिखाई देता है। जैसे-जैसे समाज विकसित हुआ उसी के अनुरूप ही साहित्य का सृजन होता गया। मानव व्युत्पत्ति से लेकर आज तक के समाज की उत्तरोत्तर प्रगति को लिपिबद्ध करने का प्रयास साहित्य के माध्यम से हुआ। कोई भी रचनाकार अपनी रचना में तत्कालिन युगीन परिस्थितियाँ, आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ, सामाजिक समस्याएँ आदि को वाणी देने का प्रयास करता है। अतः साहित्य में समाज जीवन का यथार्थ चित्रांकन होता है।

हिंदी साहित्य में सबसे प्रभावी विधा के रूप में उपन्यास विधा मानी जाती है। आज उपन्यास विधा के माध्यम से समाज के यथार्थ का अंकन बड़े पैमाने पर हो रहा है। उपन्यास के संदर्भ में प्रेमचंद का मत ध्यातव्य है- ''मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।''[1] इस कथन से स्पष्ट होता है कि उपन्यास विधा मानव-जीवन से जूड़ी हुई है। मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि जीवन विशेष को उद्‌घाटित करने का प्रयास उपन्यास के माध्यम से होता है।

आज का उपन्यास साहित्य अनेक विचारधाराओं को लेकर आगे बढ़ रहा है। साहित्यकार अपने साहित्य की सामग्री समाज से लेता है। उसमें समाज की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति तथा इन स्थितियों से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का यथातथ्य चित्रण करना साहित्यकार का दायित्व होता है। आज का साहित्यकार समाज और सामाजिक समस्याओं के प्रति अनभिज्ञ नहीं है। अपनी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं का

---

1. डॉ. सरोजनी त्रिपाठी - आधुनिक उपन्यासों में वस्तु-विन्यास, पृष्ठ - 44

अंकन करते हुए समस्याओं को सुलझाने, समाज को प्रवृत्त करने का प्रयास साहित्यकार करता है। इस संदर्भ में डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान लिखते हैं- ''अच्छा साहित्यकार स्रष्टा और द्रष्टा दोनों का काम करता है। साहित्यकार और कवि जीवन के शुल्क इतिवृत्त से उसे याने मानव को निकालकर सरसता का स्त्रोता प्रवक्ति के लिए समसामायिक समस्याओं का चित्रण सदैव करता ही रहा है। एक जागरूक मानवतावादी कलाकार की आत्मा इसी समसामायिकता व युगीनता में निवास करता है न कि वादीयता में। साहित्यकार वस्तुतः समाज की ईकाई होता है। इस नाते यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने युग की राष्ट्रीय जातीय और अन्य सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं की ओर से उदासीन न हो प्रत्युत उन्हें उभार कर सबके सम्मुख रखे।''[1] अतः साहित्यकार का उत्तर दायित्व होता है कि समाज की विभिन्न समस्याओं का अंकन कर समाज को सोचने के लिए विवश करें क्योंकि साहित्यकार भी समाज का अंग है।

महेंद्र भटनागर के अनुसार- ''जीवन की नाना समस्याओं को उद्घाटन तथा उनका हल, यद्यपि हल सदैव अपेक्षित होता, आज के साहित्य का प्रधान कर्म है। साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है, वह अपने समय की समस्याओं से विमुख नहीं रह सकता।''[2] आधुनिक युग में समस्यारहित जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मनुष्य अपनी जितनी भी उन्नति करना चाहता है, उतना ही उसके जीवन में समस्याएँ बढ़ती ही जाती हैं। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद साहित्य का उद्देश्य ही समस्याओं पर विचार करना एवं उनका हल उपस्थित करना घोषित करते हैं। प्रेमचंद के अनुसार- ''अब वह (साहित्य) केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किंतु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है।''[3] यह कथन सही है आज साहित्य श्रृंगार भावना के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य के जीवन से जुड़ा है। समाज के निम्न से निम्न वस्तु, व्यक्ति, जाति आदि का यथार्थ चित्रण यह आधुनिक उपन्यास साहित्य की विशेषता बनी है। अतः

---

1. डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान - आधुनिक हिंदी साहित्य, पृष्ठ - 30
2. महेंद्र भटनागर - समस्या मूलक उपन्यासकार : प्रेमचंद, पृष्ठ - 19
3. प्रेमचंद - कुछ विचार, पृष्ठ - 8

साहित्य के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालना साहित्यकार का आद्य कर्तव्य होता है।

4.1 'समस्या' शब्द का अर्थ -

'समस्या' शब्द का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग बताया है तथा शब्दकोश के अंतर्गत भी विभिन्न अर्थ दिखाई देते हैं। संस्कृत आचार्यों ने 'समस्या' का केवल यह अर्थ लिया है कि ''किसी श्लोक या छंद आदि का वह अंतिम चरण या पद जो पूरा छंद बताने के लिए कवियों के सम्मुख रखा जाता है।''[1] यह अत्यंत संकुचित अर्थ हुआ। 'समस्या' शब्द का अर्थ विभिन्न शब्दकोश के अंतर्गत इस प्रकार दिए हैं। 'नालंदा विशाल शब्दसागर' के अनुसार समस्या का अर्थ है- ''वह उलझनवाली विचारणीय बात जिसका निराकरण सहज में न हो सके। कठिन या विकट प्रसंग।''[2]

'भाषा शब्दकोश' के अनुसार 'समस्या' का अर्थ है- ''कठिन या जटिल प्रश्न, गूढ़ या गहन बात, उलझन, कठिन प्रसंग।''[3] 'हिंदी विश्वकोश' के अंतर्गत 'समस्या' शब्द का अर्थ ''संघटन, मिश्रण, मिलने की क्रिया, कठिन अवसर या प्रसंग''[4] से लिया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समस्या एक उलझन एवं कठिन अवसर या प्रसंग के सिवाय और कुछ भी नहीं है। समस्याओं को जानने के लिए समग्र व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है। समस्या एक जटिल प्रक्रिया है। एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती है। एक समस्या अनेक समस्याओं की उद्भावक होती है।

4.2 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ -

प्रगतिशील रचनाकारों ने अपनी रचनाओं मे समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया है। समाज का एक अंग होने के नाते साहित्यकार सामाजिक समस्याओं से अनभिज्ञ नहीं रहता। आधुनिक काल में वैज्ञानिक प्रगति के कारण मानव जीवन सुखदायक

---

1. श्री. नवलजी - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृष्ठ - 1407
2. वही, पृष्ठ - 1407
3. सं. डॉ. रमाशंकर शुक्ल - भाषा शब्दकोश, पृष्ठ - 1521
4. सं. नगेंद्रनाथ वसु - हिंदी विश्वकोश, पृष्ठ - 568

बना हुआ है। मानव जीवन के विकास के साथ-साथ मानव-जीवन की समस्याएँ बढ़ती ही गई। इस संदर्भ में डॉ. विमल भास्कर लिखते हैं- ''समस्या आज एक कठिन उलझन के सिवाय और कुछ नहीं है। मानव इस उलझन की सुलझन में इस तरह उलझ गया है कि सुलझन को पाने के लिए हाथ-पाँव हिलाने पर भी उसके हाथ में उलझन के सिवाय कुछ भी नहीं आ रहा है। मनुष्य इच्छाओं का दास है और इच्छाएँ सदैव अतृप्त रहती हैं। यही अतृप्ति कालांतर में जीवन में समस्याओं का जाल-सा फैला देती है। आज के युग में तो समस्याएँ जीवन के लिए इतनी बढ़ गई हैं कि उनके कारण जीवन स्वयं एक समस्या हो गई है।''[1] अतः इससे स्पष्ट होता है कि समाज के विकास के साथ-साथ समस्याएँ भी बढ़ती गई। अनेक सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास आधुनिक काल के साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से किया है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक ने दलित समाज की विभिन्न समस्याओं को यथातथ्य चित्रण किया है। जाति के आधार पर समाज का विभाजन होने के कारण समाज का निम्न स्तर दलित वर्ग समाज के अन्य वर्गों से पिछड़ गया। दलित समाज की समस्याएँ भी अन्य वर्गों से भिन्न दिखाई देती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने दलितों की शोषण समस्या, आर्थिक-विपन्नता, भूमिहीन मजदूरों की समस्या, अज्ञान, अंधविश्वास, धार्मिक समस्या, भ्रष्टाचार, नारी शोषण, जातिभेद आदि समस्याओं का चित्रण किया है। सदियों से पीड़ित, दबे हुए दलित समाज के यथार्थ को लेखक जगदीशचंद्र ने समाज के सामने अपने उपन्यास 'धरती धन न अपना' के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन इस प्रकार किया गया है -

4.2.1 सामाजिक समस्या -

मनुष्य समाजशील प्राणी है। व्यक्ति और समाज दोनों परस्पर पूरक हैं। जन्म से लेकर जीवन के अंत तक व्यक्ति का संबंध समाज से रहता है। समाज व्यक्तियों का

---

1. डॉ. विमल भास्कर - हिंदी समस्या साहित्य, पृष्ठ - 9

संगठन या समूह है जो अपनी उद्दिष्टों की पूर्ति के लिए प्रयासरत रहता है। मनुष्य की विकास प्रक्रिया में परिवार के बाद समाज का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होने के कारण समाज द्वारा निर्धारित नीति-नियम, प्रथाएँ, रूढ़ियाँ आदि का कड़ाई से पालन किया जाता है। समाज में रहते हुए विभिन्न अधिकारों का भोग उठाते समय व्यक्ति के कुछ कर्तव्य भी होते हैं। अपना उत्तरदायित्व पूरा करते समय व्यक्ति की मानसिकता संकुचित होती है। जिससे अनेक सामाजिक प्रश्न निर्माण होते हैं। डॉ. सुरेश गायकवाड लिखते हैं- "समाज में व्यक्तियों की मुलभूत आवश्यकताएँ बढ़ती हैं और सामाजिक संस्था तथा संस्कृति उसे पूर्ण करने में असमर्थ या अयशस्वी हो जाती है तब जो स्थिति पैदा होती है, उसे ही सामाजिक समस्या कहा जाता है। समाज में आए हुए परिवर्तन और उसकी प्रक्रिया से निर्माण हुए सामाजिक विघटन के परिणामों के कारण ही विविध सामाजिक समस्या निर्माण होती है।"[1] यह कथन सही है कि समाज-परिर्वन के साथ-साथ व्यक्तियों का रहन-सहन, आचार-विचार आदि में काफी अंतर आ जाता है। जिसके कारण प्राचीन सामाजिक मूल्य एवं नवीन विचारों की टकराहट होती है। जिससे सामाजिक समस्याओं का निर्माण होता है।

आधुनिक काल में व्यक्ति समाज की अपेक्षा अपने वैयक्तिक स्वार्थ को महत्त्व दे रहा है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण की भागदौड़ में विभिन्न सामाजिक समस्याएँ समाज के सामने उपस्थित हैं। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित समाज की समस्याओं को यथावत चित्रित किया है। दलित समाज में शोषण, अंधविश्वास, अवैध यौन-संबंध, नारी शोषण आदि विभिन्न सामाजिक समस्याएँ प्रखर रूप में दिखाई देती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्याएँ इस प्रकार हैं-

4.2.1.1 प्रेम-समस्या -

मानव समाज में प्रेम को महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेम यह एक प्रकृति की देन है। कालानुरूप प्रेम का स्वरूप तथा परिभाषा बदलती रही है। मातृ-पितृ प्रेम, पति-पत्नी प्रेम,

---

1. डॉ. सुरेश गायकवाड - जैनेंद्र के कथा-साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ, पृष्ठ - 47

देश प्रेम, भगवद् प्रेम आदि विभिन्न प्रेम के रूप होते हैं। आज-कल बदलते मानसिक मूल्यों के कारण प्रेम यह शब्द युवक और युवती के आकर्षण के लिए प्रयोग किया जाता है।

यौवनारंभ मे लड़का-लड़की में आकर्षण होता है और इसी आकर्षण की वजह से दोनों एकत्र आते हैं। दोनों एक-दूसरे की भाव-भावनाएँ समझ लेते हैं। प्रेम में इतने गुम होते हैं कि उन्हें समाज का ध्यान ही नहीं रहता। प्रेम के संदर्भ में डॉ. ब्रजमोहन शर्मा लिखते हैं- ''जैसे पत्थरों का कलेजा रौंदकर द्रुतगामी झरने एकदम फूटते हैं, जैसे धरती की कोख को चीर अंकुर प्रस्फुटित होते हैं, वैसे ही यौवनागम होते ही प्रेमानुभव होता है। यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है।''[1] परंतु आज युग की बदलती हुई मान्यताएँ, कल्पनाएँ तथा स्वयं व्यक्ति की विवेक भावना और चुनावों ने प्रेम को उसके मूल अर्थ को धूमिल कर दिया है। प्रेम को समाज मान्यता नहीं मिलती। कभी-कभी सामाजिक भय के कारण युवक-युवती खुदखुशी तक करते हैं। प्रेमी अगर विवाह करना चाहे तो भी उसे समाज मान्य नहीं करता। सामाजिक रूढ़ि तथा बंधनों का प्रभाव व्यक्ति पर इतना होता है कि उनके विरोध में जाना मुश्किल होता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने काली और ज्ञानो के प्रेम की त्रासदी का चित्रण किया है। जीतू के घर पहली ही नजर में काली के शीशम जैसे रंग के सुगठित शरीर एवं स्वाभिमानी स्वभाव पर ज्ञानो रीझ जाती है। काली के साथ के संबंध में ज्ञानों की कामवासना हावी नहीं है। कितनी ही बार काली के शरीर संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करने पर उसने नाराजी व्यक्त की है। उनके इस प्रेम को समाज मान्यता नहीं देता। हर चौराहे पर काली-ज्ञानो के प्रेम की चर्चाएँ होती हैं। ज्ञानो और काली के प्रेम के संदर्भ में संतू चमार तसल्ली होने पर कहता है कि ''मैंने तो यह सुना था कि दोनों का आपस में आँख-मटक्का चल रहा है।''[2] गाँव के लोग ज्ञानो को देखकर 'काली की मोरनी' कहकर चिढ़ाते थे। फिर भी काली-ज्ञानो दोनों निड़र होकर मिलते रहते थे। ज्ञानो को काली से गर्भ रहता है परंतु एक ही गोत्र के होने की वजह से दोनों शादी नहीं कर सकते। अतः दोनों ईसाई धर्म में

---

1. डॉ. ब्रजमोहन शर्मा - कथा लेखिका : मन्नू भंडारी, पृष्ठ - 87
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 255

परिवर्तन करना चाहते हैं। ज्ञानो के कुमारी माता होने पर घर में उसके माँ के द्वारा लोकलाजवश गर्भ गिराने की कोशिश होती है। अंत में ज्ञानो को जहर देकर मार दिया जाता है। ज्ञानो के मृत्यु की खबर पाकर काली विक्षिप्त अवस्था में घूमता रहता है। दोनों के प्रेम की त्रासदी का अंकन लेखक जगदीशचंद्र ने किया है। लेखक जगदीशचंद्र लिखते हैं- ''गाँव में हर प्रेम की मारी मुटियार का गर्भवती होने के बाद यही हाल होता था और ऐसी मुटियार की माँ की चीखें बहुत ही करुणाभरी होती थी क्योंकि उनमें बेटी के पाप के साथ-साथ उसके अपने पाप का पछतावा भी शामिल होता था।''[1] इससे स्पष्ट होता है कि आज प्रेम समस्या बन गई है। स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में समाज की मानसिकता पुरानी ही है। पुरानी मानसिकता में जी रहे समाज में प्रेम समाजमान्य न होकर समस्या मानी जाती है।

4.2.1.2 विवाह की समस्या -

विवाह संस्था का मानवी जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न धार्मिक संस्कारों से विवाह एक है। समाज में हर एक व्यक्ति का विवाह होना आवश्यक माना है। भारतीय संविधान के अनुसार विवाह के लिए लड़के की आयु 21 वर्ष और लड़की की आयु 18 वर्ष योग्य मानी है। विवाह से दो व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) एकत्र आकर धार्मिक अथवा सामाजिक कर्तव्य की पूर्ति हेतु निर्माण की हुई सामाजिक संस्था है। डॉ. सीताराम झा लिखते हैं कि ''सामाजिक संस्थाओं में विवाह का स्थान सर्वोपरि है। सुव्यवस्थित रूप से सृष्टि को संचारित करने, पारिवारिक जीवन को मुधर बनाने तथा सामाजिक जीवन में कामभावना को पवित्रता का आकार प्रदान करने का श्रेय विवाह को ही है।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि मानव-जीवन की सहजात वृत्तियों का विकास के लिए विवाह-संस्था आवश्यक है।

आधुनिक काल में विवाह की ओर देखने का लोगों का नजरिया बदल गया है। शिक्षा ग्रहण तथा कैरियर की भागदौड़ में युवक-युवतियों को अपने विवाह की ओर देखने के लिए थोड़ी भी फुरसत नहीं है। परिणामतः उम्र बढ़ जाने से शादी होने में कठिनाई होती है। देहातों के युवाओं में भी यही समस्या दिखाई देती है। विवाह के समय खानदान,

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 283
2. डॉ. सीताराम झा 'श्याम' - भारतीय समाज का स्वरूप, पृष्ठ - 139

लड़के की उम्र, आर्थिक स्थिति, माँ-बाप आदि बातों को देखा जाता है। सभी बातों का विचार करते हुए विवाह तय किए जो हैं। आर्थिक विपन्नता, उम्र बढ़ना, माँ-बाप न होना आदि कारणों से युवक-युवतियों का विवाह नहीं हो पाता। ऐसे में विवाह एक समस्या के रूप में सामने आता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज के युवकों की विवाह समस्या का चित्रण किया है। आर्थिक विपन्नता तथा उम्र बढ़ जाने के कारण संतासिंह चमार जैसे दलित का विवाह नहीं हो पाता। विवाह के बारे में सन्तासिंह काली से कहता है- ''कालीदास लोग लड़के को लड़की नहीं देते बल्कि उसके माँ-बाप को देते हैं... खानदान देखते हैं... जब खानदानी ही न हो तो देखने कौन आएगा ?''[1] यह कथन सही है कि विवाह के समय खानदान को महत्त्व दिया जाता है। भूमिहीन मजदूरों में विवाह की स्थिति और भी दयनीय होती है। भूमिहीन मजदूरों के पास जमीन-जायदाद न होने के कारण विवाह में बाधा निर्माण होती है। सन्तासिंह के शब्दों में ''आदमी के पास चार खेत हो तो अर्थी में लेटकर भी शादी करा सकता है लेकिन मेहनत मजदूरी करनेवाले आदमी के सिर पर किसी का साया हो तभी शादी होती है।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि जिसके माँ-बाप नहीं होते उनका विवाह होना बहुत कठिन है। लोगों की ब्याह के संदर्भ में पुरानी मान्यताओं के कारण विवाह एक सामाजिक समस्या बन गई है। परंतु आधुनिक काल में शादी-ब्याह के बारे में युवक-युवतियों में नए विचार दिखाई देते हैं। आज-कल लड़का-लड़की की पसंद को महत्त्व दिया जाता है। विवाह के संदर्भ में जाति के बंधन थे वे आंतरजातीय विवाह से नष्ट होते जा रहे हैं। इस कारण अनेक सामाजिक समस्याएँ सुलझाने का प्रयास हो रहा है।

4.2.1.3 स्त्री-भ्रूण हत्या -

किसी भी देश या समाज के विकास का आकलन उस देश की महिलाओं की स्थिति का आकलन कर लिया जाता है। आधुनिक युग में संचार क्रांति के कारण हम नए

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 105
2. वही, पृष्ठ - 105

संसार के देहलीज पर खड़े हैं। फिर भी वर्तमान समय में अनेक प्रयासों के बावजूद हमारे देश की महिलाओं की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हो पाया है। समाज में स्त्रियों की संख्या कम होती रही है। बदलते मानवीय मूल्य तथा सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ स्त्रियों की समस्याएँ बढ़ती ही जा रही हैं।

पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में लड़का-लड़की भेद किया जाता है। लड़के को बुढ़ापे की लाठी माना जाता है। इसी मानसिकता के कारण जन्म से पहले ही लड़कियों की हत्याएँ की जाती हैं। आज वैज्ञानिक युग में लिंग-निदान के जरिए यह काम आसान हुआ है। बलात्कार, अवैध यौन-संबंध, शारीरिक शोषण आदि के कारण कुमारी माता तथा उसके बच्चे को समाज स्वीकार नहीं करता। अतः गर्भपात के द्वारा भ्रूण हत्याएँ की जाती हैं। स्त्री-भ्रूण हत्या की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। बढ़ती स्त्री-भ्रूण हत्या के बारे में ज्ञानेंद्र रावत लिखते हैं- ''भ्रूण बनाम माता का मसला नहीं है। इस समय रहते विचार किया जाना जरूरी है अन्यथा यह एक दिन विकराल रूप धारण कर लेगी और उस दिन इस पर अंकुश लगा पाना असंभव हो जाएगा।''[1] आज 'बालिका वर्ष' जैसे विभिन्न कार्यक्रमों से भ्रूण हत्या पर रोक लगाने की कोशिश की जा रही है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने बेबे हुकमा तथा ज्ञानों इन दलित स्त्रियों के माध्यम से स्त्री-भ्रूण हत्या की समस्या की ओर संकेत किया है। बदलते सामाजिक एवं नैतिक परिवेश में बेबे हुकमा जैसी दलित स्त्री अपना यौवन तथा सुंदरता बनाए रखने के लिए अपने ही हाथों से अपने बच्चों की हत्या करती है। लेखक जगदीशचंद्र लिखते हैं- ''बेबे हुकमा ने तेरह बच्चों को जन्म दिया था। लेकिन उनमें से बारह को अपने हाथ से धरती की गोद में लिटा दिया था।''[2] यह सही है कि आजकल कुछ स्त्रियाँ अपनी सुंदरता तथा यौवन को बनाए रखने के लिए बच्चों को जन्म देने-से कतराती हैं। दलित युवती ज्ञानो काली से कुमारी माता बनती है। सामाजिक मर्यादाओं के कारण काली और ज्ञानों दोनों का विवाह नहीं हो पाता। विभिन्न औषधियाँ देकर ज्ञानो का गर्भ गिराने की कोशिश उसकी माँ

---

1. सं. ज्ञानेंद्र रावत - औरत त्रासदी का सच, पृष्ठ - 98
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 28

जस्सो करती है। औषधियों के काम न देने पर अंत में लोकलाजवश जस्सो अपनी बेटी को जहर देकर ज्ञानों तथा उसके पेट-से बच्चे की हत्या करती है। एक माता के मन में अपनी बेटी के कुमारी माता बनने का डर कहीं अधिक होता है। ज्ञानों की माँ जस्सो जहर देने के लिए विवश हो जाती है। "कई बार उसके जी में आया कि उस पुड़िया को नाली में फेंक दें लेकिन जब यह सोचती कि सात-आठ महीने के बाद उसकी कँवारी बेटी के बच्चा जन्म लेगा तो वह काँप जाती।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि कुमारी माता तथा उसके बच्चे का स्वीकार समाज नहीं करता। अतः समाज के डर से स्त्री-भ्रूण हत्या को और भी बढ़ावा मिलता है।

स्त्री-भ्रूण हत्या के कारण समाज में स्त्री-पुरुष प्रमाण में काफी गिरावट आयी है। स्त्रियों की समस्या घटने के कारण समाज में अनेक समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। आजकल शादी-ब्याह के लिए लड़कियाँ मिलना कठिन हो गया है। समाज में बड़ी मात्रा में स्त्रियों का शोषण दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। अतः स्त्री-भ्रूण हत्या तथा लड़की के प्रति समाज की मानसिकता में बदलाव लाना जरूरी है।

4.2.1.4 अवैध यौन-संबंध -

कामपूर्ति मानव समाज की सहजात वृत्ति है और कामपूर्ति के लिए विवाह संस्था का निर्माण किया गया है। विवाह से ही स्त्री-पुरुष अपनी यौन-भावना की पूर्ति करते हैं, परंतु कभी-कभी शारीरिक अतृप्ति के कारण स्त्री-पुरुष दोनों अन्य व्यक्तियों के साथ यौन-संबंध स्थापित करते हैं। आजकल टी. व्ही. पर दिखाए जानेवाले अश्लील फिल्मों का प्रभाव युवाओं पर पड़ रहा है। जिससे आज का युवा वर्ग भी स्त्रियों के साथ अवैध यौन-संबंध रखने में हिचकिचाता नहीं है। समाज में अवैध यौन-संबंध की समस्या इतनी तीव्र गति से बढ़ रही है जिससे समाज का नैतिक पतन हो रहा है।

अवैध यौन-संबंध वेश्यावृत्ति का ही दूसरा नाम है। भारतीय समाज में फैले अवैध यौन-संबंध के बारे में डॉ. योगेश सूरी लिखते हैं- "काम जीवन की सहजात प्रवृत्ति है। मनुष्य-तो-मनुष्य, पशु-पक्षियों में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे पेट की भूख जन्मजात है वैसे सेक्स भी जन्मजात है। पेट की भूख की तृप्ति जैसे अनिवार्य है वैसे सेक्स की

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 281

तृप्ति भी अनिवार्य है। सेक्स की अतृप्ति जीवन में समस्याएँ खड़ी कर सकती है। वह जीवन के विकास में बाधा स्वरूप होती है। इससे मनुष्य के मानसिक तथा शारीरिक विकास पर भी कुप्रभाव पड़ता है।''[1] कहना गलत नहीं होगा कि यौन अतृप्ति के कारण समाज में अवैध यौन-समस्या ने विकृत रूप धारण कर लिया है।

लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज में फैले अवैध यौन-संबंध का चित्रण 'धरती धन न अपना' उपन्यास में किया है। आर्थिक विपन्नता, अज्ञान, मजबूरी के कारण दलित स्त्रियाँ गाँव के जमींदार, चौधरी, साहूकार आदि से अवैध संबंध रखती है। चौधरी हरनामसिंह दलित स्त्री प्रीतो की गरीबी का लाभ उठाकर उसके साथ अवैध यौन संबंध रखता है। अवैध यौन-संबंध की जड़ें घोड़ेवाहा गाँव में इतनी फैली हैं कि गाँव का पुजारी भी लोटा भर खीर का लालच दिखाकर दलित स्त्रियों के साथ अवैध-संबंध बनाए रखता है। इतना ही नहीं दलित समाज के विभिन्न जातियों में भी यौन-संबंध रहता है। जिससे जाटों और चमार जातियों में अवैध संतानें यह समस्या बनी हुई है। एक चमार द्वारा चौधरी के बेटे को मारपीट होने पर पंचायत में दलित समाज का बुजुर्ग बाबे फत्तू कहता है कि ''जब जाट और चमारों का खून मिलने लगा तो यह गड़बड़ होने लगी, अगर आपके ही खून ने आपके बच्चे को मारा है तो दुःख क्यों हुआ ?''[2] अवैध संतानों के कारण समाज में उनके पालन-पोषण की समस्या खड़ी हो जाती है। सन्तासिंह चमार पाशो के साथ अवैध संबंध रखता है।

अपने और पाशो के बीच रहे अवैध-संबंध के बारे में सन्तासिंह कहता है- ''वही जो कुत्ते का कुतिया से होता है।''[3] इस कथन से स्पष्ट होता है कि लोग अपनी कामपूर्ति के लिए ही केवल दलित स्त्रियों से संबंध रखते हैं। अवैध यौन-संबंध के कारण दलित समाज की स्त्रियाँ यौन-शोषण की चक्की में पीसती जा रही हैं। अवैध यौन-संबंध की समस्या के कारण समाज का परिवेश नैतिक दृष्टि से हीन होता है। अवैध संबंधों से उत्पन्न संतानों को कोई नहीं पूछता। अतः ऐसी संतानें धीरे-धीरे चोरी, डकैती, लूटपाट आदि से

---

1. डॉ. योगेश सूरी - यशपाल के उपन्यासों में नारी जीवन की की समस्याएँ, पृष्ठ - 121
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 172
3. वही, पृष्ठ - 94

अपना जीवनयापन करती है। अवैध यौन-संबंध की समस्या प्राचीन काल से आज तक समाज को सता रही है।

4.2.1.5 नारी शोषण -

प्राचीन काल से भारतीय समाज में पुरुषों को सर्वश्रेष्ठ स्थान रहा है। पुरुषप्रधान भारतीय संस्कृति में स्त्रियों का स्थान निम्न माना जाता है। नारी को अबला माना है। वह पुरुषों पर अवलंबित है। नारी को स्वतंत्रता नहीं दी गई थी।

आज आधुनिक काल में महिला सशक्तीकरण ने जोर लिया है। ऐसे में स्त्रियाँ प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करती हुई नजर आती हैं। शिक्षा तथा स्त्री-स्वतंत्रता के कारण स्त्री आत्मनिर्भर बनी है। अपने कृतित्व के बल पर उसने प्रगति के नए-नए क्षेत्र लाँघ चुकी है। भारत में ऐसी महान नारियों ने जन्म लिया जिससे देश का गौरव और भी बढ़ गया है। रजिया सुल्तान, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, इंदिरा गांधी, कल्पना चावला आदि स्त्रियों ने अपने कृतित्व के बल पर अपना नाम ऊँचा किया दिखाई देता है। परंतु समाज में आज भी पुरुषी मानसिकता स्त्रियों की प्रगति सहन नहीं कर पा रही है। पुरुष-प्रधान संस्कृति की दोगली नीति के कारण आज देहातों में स्त्रियों का बड़े पैमानों पर शोषण हो रहा है। अशिक्षा, अंधविश्वास, आर्थिक मजबूरी की वजह से देहातों में नारी शोषण होता है।

देहातों में दलित स्त्रियों की भी हालत अत्यंत दयनीय है। ज्यादातर उच्चवर्गीय समाज के लोग निम्नवर्गीय दलित स्त्रियों का शोषण करते नजर आते हैं। दलित स्त्रियों के शोषण के संदर्भ में डॉ. धर्मकीर्ति के विचार दृष्टव्य हैं- "सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा दलित महिलाओं की स्थिति तो और भी दयनीय एवं शोचनीय है। कहीं-कहीं तो इनका जीवन पाशविक एवं नारकीय बना दिया गया। ये निरक्षरता एवं पर्दा-प्रथा के कारण समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय और समस्त मानवाधिकारों से वंचित हैं।"[1] समाज में सदियों से दलित महिलाओं का शोषण होता आया है। किसान और मजदूर के बाद भारतीय समाज का एक बृहत शोषित समूह भारतीय नारी है।

---

1. सं. ज्ञानेंद्र रावत - औरत त्रासदी का सच, पृष्ठ - 52

'धरती धन न अपना' उपन्यास सिर्फ दलित नारियों का दस्तावेज नहीं है बल्कि पूरे विश्व के नारी-जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने नारी के मानसिक, शारीरिक, आर्थिक तथा सामाजिक शोषण का चित्रण किया है। लक्षो, प्रीतो जैसी दलित स्त्रियाँ अर्थाभाव के कारण जमींदार, चौधरी आदि से यौन-संबंध रखती हैं। हरदेव चौधरी दिन दहाड़े लक्षो पर बलात्कार करता है। मंगू चमार जैसे दलित युवक अपनी ही जाति की युवतियों पर बूरी नजर रखते हैं। इस संदर्भ में दिलसुख चौधरी मंगू से कहता है- ''तेरा क्या मुकाबला है। तू तो चमादड़ी का रांझा है। पठ्ठे ने उसे पूरी तरह जवान भी नहीं होने दिया। पहले ही उसपर काठी डाल दी।''[1] यहाँ पर स्पष्ट होता है कि दलित समाज में ही कुछेक ऐसे लोग होते हैं जो अपनी ही जाति की स्त्रियों पर कुदृष्टि रखते हैं। उनका मानसिक एवं शारीरिक शोषण करते हैं।

दलित स्त्रियों को समाज में निम्न दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें सार्वजनिक स्थानों मंदिर, पनघट आदि पर प्रवेश निषिद्ध माना गया था। अज्ञान और अंधविश्वास के कारण दलित स्त्रियाँ अपने अधिकारों से वंचित दिखाई देती हैं। एक उपभोग्य वस्तु के रूप में केवल झाड़ू लगाना, गोबर उठाना, बर्तन माँजना आदि काम करते हुए स्त्री को जीवनयापन करना पड़ता है। नारी शोषण के बारे में डॉ. रेवा कुलकर्णी का मत है- ''नारी की गुलामी का एकमात्र कारण है, उसकी आर्थिक परतंत्रता।''[2] उक्त कथन सही है कि सदियों से नारी को अबला कहकर आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित रखा गया है। अपने जीवन में वह पुरुष पर अवलंबित रहती थी। अतः आर्थिक अभाव एवं मजबूरी के कारण पुरुषी मानसिकता स्त्रियों का मानसिक एवं शारीरिक रूप से शोषण करती है, परंतु आधुनिक काल में स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ है। एक आदर्श माता, गृहिणी, बहन, पत्नी के साथ-साथ आत्मनिर्भर नारी का रूप आज हम समाज में देखते हैं। आधुनिक काल में नारी की ओर देखने का समाज का नजरिया बदल गया है।

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 135
2. डॉ. रेवा कुलकर्णी - हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृष्ठ - 96

4.2.1.6 अंधविश्वास -

मनुष्य सब ओर से आशाहीन होने पर ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास रखता है। प्रत्येक सुख-दुःख का निर्माता ईश्वर है ऐसा लोग मानते हैं। इसी वजह से समाज में अंधविश्वास को बढ़ावा मिलता है। नगरों-महानगरों की अपेक्षा ग्रामीण अनपढ़ लोग पारंपारिक रूप से अंधविश्वास का पालन करते रहते हैं। अज्ञान के कारण दलित समाज मंत्र-तंत्र, जादूटोणा, पूजा-अर्चा आदि पर विश्वास रखते हैं। दलित वर्ग में फैले अंधविश्वास के बारे में डॉ. गोकाककर लिखते हैं- ''अंधविश्वास, परंपरा प्रियता एवं प्रथापालन इनकी कुछ विशेषताएँ रही हैं। गरीबी, दुःख, दैन्य तो इस वर्ग की पैतृक संपत्ति ही रही है।''[1] यह कथन सही है कि अज्ञान और अशिक्षा के कारण दलित समाज अंधविश्वास की ओर आकृष्ठ हुआ है। आज भी दलित समाज विभिन्न रूढ़ियों-प्रथाओं का पालन करता हुआ दिखाई देता है।

देहातों में धार्मिक आस्था के कारण समाज में अंधविश्वास प्रचलित होते हैं। अज्ञान, भोलापन एवं परिवेश के प्रभाव का डर लोगों के मन में होता है। अचानक आई विपदाओं के समय गाँव के लोगों का ईश्वर ही सहारा होता है। गाँव की जीवन प्रणाली भाग्य और प्रकृति पर निर्भर होती है। गाँवों में पाप-पुण्य, भूत-प्रेत, स्वर्ग-नरक आदि धारणाओं पर विश्वास रखा जाता है। ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा का रूप पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, यज्ञ, बलि देना, व्रत-उपवास आदि में देखा जाता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज में फैले अंधविश्वास का चित्रण किया है। बीमारी को हटाने के लिए, बाढ़ रोकने तथा मनोकामना पूर्ति के लिए बलि देना, मांत्रिक को भूत-प्रेत उतारने के लिए बुलाना आदि अंधविश्वास दलित समाज में भयानक रूप लिए हुए स्थापित हैं।

प्रतापी चाची के बीमार पड़ने पर काली मांत्रिक को बुलाता है। मांत्रिक चाची की बिमारी का कारण काली के द्वारा नए मकान का पूजा-पाठ न करने से बताता है। मांत्रिक कहता है- ''एक बात याद रखो। जब कभी नई इमारत बनेगी उसमें प्रेत आ जाएँगे। वे चोला चाहते हैं।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि नए मकान में रहने से पूर्व मांत्रिक के

---

1. डॉ. सुधाकर गोकाककर - मार्क्सवाद और हिंदी कहानी, पृष्ठ - 94
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 176

द्वारा शांति या हवन किया जाता है। आजकल सत्यनारायण की पूजा-अर्चा करना समाज में प्रथा हो गई है। बाढ़ को रोकने के लिए गाँववाले बकरी की बलि देते हैं, परंतु बलि देने से बाढ़ रूकती नहीं। अंत में गाँव की दूसरी ओर से जमीन की खुदाई करते हुए पानी का बहाव उसमें से छोड़ देते हैं। जिससे बाढ़ रूक जाती है। यहाँ पर अंधविश्वास लोगों का बाढ़ रोकने के काम नहीं आता है।

भूत-प्रेतों के बारे में देहातों के लोग काफी चर्चाएँ करते रहते हैं। किसी को जिंदा जलाने या मार देने से उस व्यक्ति का भूत होता है। यह अंधविश्वास दलित समाज में फैला है। इसी भय के कारण दलित युवती ज्ञानों की मृत्यु के पश्चात् सभी उसकी अर्थी को कंधा देते हैं। ''मुहल्ले के हर व्यक्ति ने उसकी अर्थी को कंधा दिया ताकि वह चुडैल बनने के बाद उन्हें परेशान और तंग न करे।''[1] उक्त अवतरण से स्पष्ट होता है कि अनपढ़ दलित समाज में अंधविश्वास उच्च कोटि पर था। अंधविश्वास की वजह से दलित समाज अन्य वर्गों से पिछड़ गया है। तंत्र-मंत्र, जादूटोणा, भूत-प्रेतों के यह समाज इतना आदि हो गया है कि वे नए विचारों को स्वीकार करने में असमर्थ दिखाई देते हैं।

सदियों से दलित समाज शिक्षा से वंचित रहा है। अतः वे अपनी परंपराएँ, रूढ़ियों आदि से चिपके हुए दिखाई देते हैं। इन दलित समाज में शिक्षा के माध्यम से चेतना जगाने का प्रयास फुले, शाहू, आंबेडकर जैसे महामानवों ने किया। अतः इन महामानवों के अथक प्रयत्नों से आज का दलित समाज अंधविश्वास से दूर हट गया है। उनमें शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार बड़ी मात्रा में हुआ है।

4.2.1.7 दलित-शोषण -

भारतीय समाज-व्यवस्था का आधार जाति रहा है। जाति-व्यवस्था के कारण समाज का विभाजन अनेक वर्गों में हुआ। उच्च-नीच, सवर्ण-दलित, शोषक-शोषित, मालक-मजदूर आदि में समाज बांटा गया। इसी भेदा-भेद के कारण समाज में शोषण को प्रश्रय मिला है। अज्ञान और अंधविश्वास के कारण दलित वर्ग का शोषण बड़ी मात्रा में

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 283

हुआ। उच्चवर्गीयों द्वारा दलितों का मानसिक और शारीरिक रूप से शोषण किया हुआ दिखाई देता है।

समाज में जमींदार वर्ग सत्ता और धन के बल पर दलितों का शोषण करते हैं। आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने पर भी उच्च वर्ग दलित समाज का आर्थिक शोषण करते हैं। आर्थिक शोषण के बारे में डॉ. अर्जुन चव्हाण लिखते हैं कि ''आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होकर भी अर्थार्जन के लिए उच्च वर्ग मानवी मूल्यों की हत्या करता है और मध्य तथा निम्न वर्गों का शोषण करता है।''[1] इस कथन से उच्चवर्गीय लोगों की मानसिकता का परिचय होता है। दलित समाज सदियों से शोषण की चक्की में पीसता रहा है। अज्ञान, अंधविश्वास के कारण अपने ऊपर हो रहे अन्याय-शोषण के खिलाफ आवाज उठाने से दलित समाज डरता है। इसी बात का लाभ उठाकर समाज में जमींदार, पूँजीपति लोग दलितों का शोषण करते हैं।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में घोड़ेवाहा गाँव के दलितों के अज्ञान का लाभ उठाकर चौधरी मानसिक तथा शारीरिक शोषण करते हैं। दलितों को धमकाना, जेल भिजवाने और कत्ल करने का डर दिखाना, औरतों की इज्जत लूटना, बेगार लेना, ब्याज पर ब्याज लेना आदि कई रूपों में दलित समाज का चौधरी, जमीनदारों द्वारा शोषण किया जाता है। गाँव में किसी भी प्रकार की चोरी या दंगा-फसाद हो जाने के कारण दलितों को जिम्मेवार समझा जाता है। जानवरों द्वारा फसल के नष्ट हो जाने पर संतू तथा जीतू चमार को जिम्मेवार ठहराकर चौधरी हरनामसिंह दोनों को जूतों से पीटता है। गालियाँ देना चौधरी अपना अधिकार समझते हैं। चौधरी हरनामसिंह जीतू चमार को गाली देते हुए कहता है- ''कुत्ता चमार, चमड़ी उधेड़ दूँगा। हराम की औलाद, तेरी मैं बोटी-बोटी कर दूँगा।''[2] इस प्रकार 'कुत्ता चमार', 'हराम की औलाद' आदि गालियाँ चमारों को सुननी पड़ती थी।

बेगार उठाना, मुफ्त में मालिश करवाना आदि रूप में भी दलितों का शोषण होता है। चौधरी हरनामसिंह का भतीजा हरदेव चमारों से मुफ्त में मालिश करवा लेता है। चौधरी मुंशी जैसे लोग मुफ्त में जूते बनवाकर ले जाते हैं। मंगू अपने बाप ने लिए हुए पाँच सौ

---

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृष्ठ- 75
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 22

रुपए के लिए चौधरी के यहाँ बेगारी करता है। इतना ही नहीं दलित स्त्रियों का शारीरिक शोषण करने में भी जमींदार हिचकिचाते नहीं हैं। दलित युवती लक्षो की असहायता का लाभ उठाकर चौधरी हरदेव बलात्कार करता है। इसके विरोध में दलित समाज या चमादड़ी के लोग उफ् तक नहीं करते। चुप-चाप देखते रहते हैं। चौधरी तथा जमींदारों के अत्याचार से दबा हुआ दलित वर्ग शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकता है।

सदियों से दबे-कुचले शोषित दलित समाज के शोषण के विविध रूपों पर जगदीशचंद्र ने प्रकाश डाला है। दलितों का कई रूपों में शोषण होता दिखाई देता है। दलितों के शोषण के लिए अज्ञान और अंधविश्वास यह दो कारण ही जिम्मेवार हैं। दलितों पर हो रहे शोषण को रोकने के लिए दलित समाज में शिक्षा का प्रसार होना आवश्यक है। शिक्षित दलित समाज शोषण के खिलाफ लड़ सकता है। लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज में स्थित शोषण की समस्या का चित्रण कर दलितों के शोषण के विरोध में आवाज उठाई है। आज हम देख सकते हैं कि शिक्षा के प्रचार के कारण बड़ी मात्रा में दलित समाज शिक्षित हो रहा है। शिक्षित होने के कारण उच्चवर्गियों द्वारा हो रहे दलित शोषण पर रोक लगाने का कार्य हो रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सदियों से दलित समाज पर उच्चवर्गियों द्वारा अन्याय-अत्याचार एवं शोषण हो रहा है। समाज में दलितों को निम्न समझा जाता है। अज्ञानी एवं अंधविश्वासी दलित समाज अवैध यौन-संबंध, नारी शोषण, विवाह की समस्या आदि समस्याओं से पीड़ित हैं। स्त्रियों को किसी भी प्रकार की आर्थिक स्वतंत्रता होने के कारण उनकी स्थिति सोचनीय है। दलित स्त्रियों की आर्थिक असहायता का लाभ उच्चवर्गीय उठाकर उनका मानसिक एवं शारीरिक शोषण करते रहते हैं।

दलितों की सामाजिक स्थिति के लिए उनकी जाति में से कुछ युवक होते हैं जो अपना स्वार्थ देखते हैं। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में मंगू चमार यह ऐसा दलित पात्र है जो अपने स्वार्थ के लिए चौधरी एवं जमींदारों को दलित समाज के विरोध में भड़काता है। मंगू चमार जैसी प्रवृत्तियाँ दलित समाज के लिए हानिकारक हैं। जब तक दलित समाज के लोगों की मानसिकता में परिवर्तन नहीं होगा तब तक उनकी सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव

नहीं आ सकता है। अतः दलित समाज के युवकों ने अपने स्वार्थ को त्यागकर समाज में दलितों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करना चाहिए। शिक्षित दलित युवकों का कर्तव्य है कि वह अपने समाज के लोगों को शिक्षा का महत्त्व समझाए। शिक्षा के उचित प्रसार से निश्चित ही दलित समाज के अज्ञानता एवं अंधविश्वास में बदलाव हो सकता है।

4.2.2 आर्थिक समस्याएँ -

समाज के विकास में आर्थिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। आर्थिक आय-व्यय पर ही समाज-जीवन में व्यक्ति का स्तर निर्भर रहता है। 'अर्थ' याने पैसा। सुखपूर्ण जीवन के लिए मनुष्य को पैसों की जरूरत होती है। मनुष्य की सामाजिक स्थिति उसके आर्थिक स्थिति पर निर्भर होती है। नगरों-महानगरों तथा अंचलों में भी जीने का एकमात्र साधन पैसा माना जाता है। अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हर वर्ग प्रयत्नशील रहता है।

आजकल 'अर्थ' साधन न होकर साध्य बन गया है, परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पैसा केवल जीने का साधन है, साध्य नहीं। यहाँ डॉ. अर्जुन साहू के 'अर्थ' के संदर्भ में विचार दृष्टव्य हैं- ''अब तक जीवन के लिए अर्थ की आवश्यकता समझी जाती थी और अब अर्थ के लिए जीवन साधन बन गया है। इस प्रकार अर्थ साधन मात्र न रहकर साध्य का स्थान ले लिया और इस साध्य की प्राप्ति के लिए साधन का औचित्य-अनौचित्य विचार उठ गया। जहाँ एक ओर मनुष्य का जीवन ही 'अर्थ सर्वस्व' बन गया वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति-व्यक्ति में आर्थिक विषमता की दूरी भी बढ़ती गई, जो कभी मिट नहीं पाई।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि बदलती आर्थिक नीति के कारण समाज में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, लूट-पाट आदि समस्याएँ बढ़ रही हैं।

आर्थिक व्यवस्था से सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन परस्पर जुड़े हुए हैं। आर्थिक समस्या के संदर्भ में डॉ. मुदिता चंद्रा लिखती हैं- ''श्रमिक जितना कार्य करता है, उसे उसके श्रम के अनुसार पारिश्रमिक नहीं मिलता है तब आर्थिक विषमता बढ़ती है, जो

---

1. डॉ. अर्जुन साहू - उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, पृष्ठ - 199

असंतोष की भावना उत्पन्न करती है।''[1] आजादी के बाद देश की आर्थिक विषमता नष्ट करने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए। विविध योजनाएँ एवं विकास के उपक्रम चले लेकिन विकास की धारा सामान्य जन-जीवन या पिछड़ी जन-जातियों तक पहुँच नहीं पाई। जिससे हर एक प्रदेश आर्थिक दृष्टि से कम-अधिक विकसित रहा है।

कृषि और उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के मूलाधार हैं। ''अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर ही तोड़ डाली। जिसके कारण कृषि पर निरंतर बोझ बढ़ता गया। परिणाम यह हुआ कि कृषि की दशा दयनीय होती गई और कृषक आर्थिक अभावों के बीच जीवन गुजारने के लिए बाध्य होता गया।''[2] अतः यह स्पष्ट है कि कृषि की दयनीय स्थिति के कारण समाज में विभिन्न समस्याएँ निर्माण हुई।

आर्थिक विपन्नता, रोजगार की समस्या, भूमिहीन मजदूरों की समस्या, भ्रष्टाचार आदि समस्याएँ आज समाज के सामने खड़ी हैं। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित आर्थिक समस्या इस प्रकार है -

4.2.2.1 रोजगार की समस्या -

भारत में दिन प्रतिदिन रोजगार की समस्या जटिल होती जा रही है। हर पंचवार्षिक योजना में रोजगार को महत्त्व देने पर भी यह देखा जाता है कि रोजगार न मिलने के कारण बेकारों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। बढ़ती हुई आबादी और रोजगार के साधन इनमें विषमता होने से रोजगार की समस्या का हल निकालना बहुत ही मुश्किल हो गया है।

शिक्षा के उच्च आयामों को छूकर भी आज का शिक्षित युवा वर्ग रोजगार न मिलने से बेकार पड़ा है। परिणामतः निराश एवं हताश शिक्षित युवा वर्ग हत्या, लूट, बम विस्फोट, आतंकवाद आदि का सहारा लेता हुआ नजर आता है। बदलते कानून तथा राजनीतिक ढकोसले से युवा वर्ग का मोहभंग हुआ है। बेरोजगार के बारे में डॉ. पद्मा चामले लिखती हैं- ''बेरोजगार वह होता है जो काम तो करना चाहता है, पर काम उपलब्ध नहीं

---

1. डॉ. मुदिता चंद्रा - नागार्जुन के कथा-साहित्य में मानवीय संबंध, पृष्ठ - 147
2. वही, पृष्ठ - 148

होता ।''[1] यह सही है कि आजकल युवा वर्ग योग्यता होने पर भी काम न मिलने से बेरोजगार है।

नगरों-महानगरों में रोजगार मिलने की आशा से देहात का युवा वर्ग शहरों में आ रहा है, जिससे नगरों-महानगरों की आबादी बढ़ गई है। धीरे-धीरे नगरों में भी रोजगार की समस्या दिखाई दे रही है। देहातों में ज्यादातर जनजीवन कृषि पर आधारित है। खेती पूर्णतः बारिश पर अवलंबित होने के कारण जिस वर्ष बारिश होती है तभी फसल अच्छी होती है। अतः बारिश न होने पर कृषक लोग बेकार बैठते हैं। उनके सामने रोजगार की समस्या निर्माण होती है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित पंजाब प्रांत के अंचलों में खेती बारिश पर ही निर्भर है। गाँव के निराश युवक रोजगार की खोज में शहर चले जाते थे। उपन्यास का नायक काली गाँव में कुछ न काम मिलने पर शहर जाता है, परंतु शहरों में भी वही स्थिति देखकर काली छह वर्ष पश्चात् गाँव वापस आ जाता है। शहरी मानसिकता को स्पष्ट करते हुए छज्जू शाह कहता है- ''शहर में गरीब आदमी मारा जाता है। गाँव में तो फिर भी पल जाता है।''[2] यह सही है कि शहरों में सबसे दयनीय स्थिति आम आदमी की होती है। गाँव में लोगों को पशुपालन, घास काटना, बोआई करना जैसे छोटे-मोटे काम करके अपना तथा अपने परिवार का पेट पालना होता है।

देहातों में रोजगार की समस्या से पीड़ित ज्यादातर दलित निम्नवर्गीय समाज है। शिक्षा के क्षेत्र में पीछे पड़ जाने से दलित समाज सरकारी-गैर सरकारी नौकरी से दूर रहता है। शहर से गाँव वापस आने पर काली के सामने रोजगार का प्रश्न था। काली को उसके मल्कियत की थोड़ी-सी भी जमीन नहीं थी। यहाँ तक कि जिस जमीन पर वह रहता था वह भी गाँव की साँझी हुई जमीन थी। काली को लगता है कि ''जमीन होती तो वह खेतों में हल चलाता, ढोर-डंगरों को चारा-पानी पिलाता। दूकान होती तो उसे खोलकर बैठ जाता।''[3] परंतु वह कुछ नहीं कर पाता। काली को रोजगार की समस्या सता रही होती है।

---

1. डॉ. पद्मा चामले - आधुनिक हिंदी कहानियों में युवा मानसिकता, पृष्ठ - 131
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 37
3. वही, पृष्ठ - 196

आजकल दलित समाज की रोजगार समस्या को दूर करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण दिया जा रहा है। रोजगार एवं स्वयं रोजगार की योजनाएँ कार्यान्वित हुई हैं, परंतु दलित समाज अशिक्षित होने के कारण इसका लाभ नहीं उठाता। परिणामतः उनके सामने रोजगार की समस्या खड़ी हो जाती है। अतः रोजगार की समस्या को नष्ट करने के लिए शिक्षा का प्रसार एवं नए-नए उद्योगों की स्थापना करना आज आवश्यकता बन गई है।

4.2.2.2 भूमिहीन मजदूरों की समस्या -

देश की ज्यादातर जनसंख्या देहातों में बसी हुई है। ग्रामीण क्षेत्र का प्रमुख व्यवसाय खेती होता है। देहातों में खेती तथा खेती पर आधारित कामों से लोगों का जीवनयापन चलता है, परंतु देहातों में एक वर्ग ऐसा भी है जिन्हें खेती या अन्य व्यवसाय के साधन नहीं हैं। ऐसा भूमिहीन वर्ग मजदूरी के सिवाय अलग काम नहीं कर सकता। इन भूमिहीन मजदूरों को जमींदारों पर अवलंबित रहना पड़ता है।

भूमिहीन मजदूरों की समाज में निम्न स्थिति मानी जाती है। उन्हें किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होती। जमींदारों के भूमिहीन मजदूर गुलाम होते हैं और वे अहसान के बोझ से दबे जमींदारों के अन्याय-अत्याचार सहते हैं। इन भूमिहीन मजदूरों को न्याय देने का प्रयास हिंदी उपन्यास साहित्य में रचनाकारों ने किया है। चंद्रभानू सोनवणे के अनुसार- ''मुंशी प्रेमचंद ने अल्प-भूधारक किसान की समस्या का चित्रण 'गोदान' के माध्यम से किया है, परंतु भूमिहीन मजदूरों की समस्या को वे पूरी क्षमता के साथ 'गोदान' में उपस्थित नहीं कर सके हैं। इन भूमिहीन मजदूरों की समस्या का चित्रण करने के लिए हिंदी साहित्य किसी अन्य 'कलम के मजदूर' की प्रतिक्षा कर रहा था। इस प्रतिक्षा को जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' लिखकर बहुत कुछ सफल करने का प्रयास किया।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट है कि जगदीशचंद्र ने भूमिहीन मजदूरों की वास्तविक स्थिति का अंकन कर न्याय देने का प्रयास किया है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित दलित समाज में ज्यादातर लोग भूमिहीन हैं। चमार, कुम्हार, काश्तकार आदि जाति के लोगों को रहने के लिए भी अपनी

---

1. चंद्रभानू सोणवणे - हिंदी उपन्यास : विविध आयाम, पृष्ठ - 311

जमीन नहीं है। काली चमार अपना कच्चा मकान गिराकर उसकी जगह पर नया पक्का मकान बनाना चाहता है। पैसों की कमी के पूर्ति के लिए वह छज्जूशाह को मकान की जगह रेहन में देना चाहता है। इस पर मुंशी छज्जूशाह काली को जमीन के मल्कियत के बारे में कहता है- ''कालीदास, जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो वह जमीन भी तुम्हारी नहीं है। वह शामलात (गाँव के जमींदारों की साँझी जमीन) जमीन है। जब तक तू या तेरे वारिस इस गाँव में रहेंगे, जमीन का वह टुकड़ा रिहायश के लिए तुम्हारा है। बाद में उसका मालिक गाँव होगा। वह तेरी मालकियती जमीन नहीं है, मौरूसी जमीन है।''[1] भूमिहीन मजदूरों की खेती न होने के कारण मजदूरी के अतिरिक्त कोई काम नहीं है।

भूमिहीन मजदूरों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि काम न मिलने से घर में शाम को चूल्हा तक नहीं जलता है। अकाल, बीमारी के समय मजदूरों को गाँव के जमींदार, मुंशी, साहूकार आदि कर्ज तक नहीं देते। उनकी दृष्टि से भूमिहीन लोग निकम्मे हैं। कर्जा देने में भी मुंशी लोग बड़ी आसामी को देखकर ही देते हैं। भूमिहीन मजदूरों को कर्जा देने से इन्कार करते हुए मंशी छज्जूशाह कहता है कि ''अगर कोई चौधरी उधार माँगेगा तो देने में ज्यादा हर्ज नहीं होगा क्योंकि हर शशमाही फसल के मौके पर वसूली कर लेंगे। ऐसे लोगों से देर-सवेर से पैसे मिल ही जाते हैं लेकिन बेहैसियत आदमी से पैसा निकालना बहुत मुश्किल होता है।''[2] साहूकारों की दोगली नीति के कारण भूमिहीन मजदूर लाचारी का जीना जीते हैं। डॉ. बदरी प्रसाद लिखते हैं कि ''गाँव के कृषि-मजदूरों के पास कोई जमीन नहीं होती। अतः वे इन जमींदार सामंतों की गुलामी करते हैं। इनके लिए धरती-धन अपना बिल्कुल नहीं है, सब कुछ भूमिपतियों का है।''[3] भूस्वामियों का भूमिहीन मजदूरों से किसी भी प्रकार का सरोकार नहीं है। जीवनयापन के लिए भूमिहीन मजदूरों को दूसरों पर अवलंबित रहना पड़ता है।

भारत के भिन्न-भिन्न भागों में जमींदारी और रैय्यतवारी व्यवस्था के कारण जमींदारों की स्थिति भिन्न-भिन्न रही है, किंतु भूमिहीन मजदूरों की स्थिति पूरे देश में एक-सी

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 55
2. वही, पृष्ठ - 60
3. वही, पृष्ठ - 150

दिखाई देती है। शिक्षा से वंचित रहने से समाज का बहुत बड़ा निम्नवर्ग मजदूरी करके अपना तथा परिवार का पेट पालता है। जगदीशचंद्र ने भूमिहीन मजदूरों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है। आज आधुनिक युग में भी देहातों में भूमिहीन मजदूर बड़ी मात्रा में दिखाई देते हैं जो अशिक्षा के कारण दूसरों का बोझ ढो रहे हैं।

4.2.2.3 आर्थिक विपन्नता -

भारतीय समाज तीन वर्गों में विभाजित है। उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। इन तीन वर्गों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति भिन्न-भिन्न दिखाई देती है। आजादी के बाद देश में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग इन दो वर्गों में काफी अंतर आया। उच्च वर्ग सत्ता एवं पूँजी के बल पर ऊपर उठता गया, परंतु निम्न वर्ग और भी निम्न होता गया। जिससे पूँजीपति वर्ग द्वारा निम्नवर्गियों का आर्थिक शोषण होने लगा।

आर्थिक विपन्नता के कारण निम्न वर्ग दो वक्त की रोटी खाने के लिए भी मोहताज हो गया। देश की आर्थिक विपन्नता की समस्या के संदर्भ में डॉ. बालकृष्ण लिखते हैं- ''देश के विभाजन से भारत की आर्थिक हानि ही नहीं हुई, अपितु देश की आर्थिक स्थिति और भी जटिल हो गई।''[1] यह कहना सही है कि आर्थिक अभाव के कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग सामाजिक स्तर से नीचे पहुँच गया। इस स्थिति का लाभ ज्यादातर उच्चवर्गीयों ने अपने स्वार्थ के लिए उठाया। जिससे निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति और भी दयनीय हो गई।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने स्वातंत्र्योत्तर काल के दलित समाज को हमारे सामने रखा है। सदियों से आर्थिक अभावों की चक्की में पीस रहे दलितों को जमींदार, चौधरी, साहूकारों पर अवलंबित रहना पड़ता है। गाँव में दलितों के लिए न रहने के लिए जमीन है और न ही जोतने के लिए। चौधरी, जमींदार आदि के खेतों में दलित लोग काम करते हुए अपना तथा अपने परिवार का पेट पालते हैं। आर्थिक विपन्नता इस हद तक है कि खाने के लिए कुछ न मिलने पर दलितों को घर के बर्तन तक बेंचने पड़ते हैं। काली ने शहर से तीन-चार सौ की लायी हुई रकम लोगों को बहुत बड़ी लगती थी। पैसों के लिए दलित स्त्रियाँ अपनी इज्जत तक बेचती थी।

---

1. डॉ. बालकृष्ण गुप्त - हिंदी उपन्यास सामाजिक संदर्भ, पृष्ठ - 43

दलित मुहल्ले में गरीबी इतनी थी कि किसी का पक्का मकान तो क्या, किसी का पक्का चूल्हा तक नहीं था। खान-पान की इतनी दुर्दशा थी कि किसी दलित को पेटभर अन्न भी नहीं मिलता था। प्रतापी चाची की चिता से उठनेवाली घी की महक सूँघते हुए प्रीतो कहती है- ''भाभी प्रतापी ने पिछले जन्म में बहुत ही अच्छे कर्म किए होंगे जो उसकी चिता पर भी देशी घी डाला गया है। एक हम हैं जिन्होने जीते जी भी देशी घी चख कर नहीं देखा।''[1] इस कथन से दलित समाज की आर्थिक विपन्नता दिखाई देती है। आर्थिक अभाव का शाप सदियों से दलितों के पीछे रहा है। अज्ञान एवं अंधविश्वासी दलित समाज का उच्चवर्गीयों द्वारा आर्थिक शोषण किया जाता है।

उच्चवर्गियों द्वारा हो रहे आर्थिक शोषण के खिलाफ दलित अदालत में न्याय की माँग नहीं करते। क्योंकि दलित लोगों को मालूम है कि पैसों के बल पर अदालत भी खरीदी जा सकती है। ऐसे माहौल में दलित लोग जाए कहाँ ? यह सवाल उठता है। दलितों की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में डॉ. वाय. बी. धुमाल लिखते हैं- ''अछूतों की मूल समस्या सामाजिक और धार्मिक है, जिसका समाधान धर्म नहीं कर सकता। जब तक अछूतों की आर्थिक दयनीय स्थिति में सुधार नहीं होगा तब तक उन्हें सामाजिक रूप में समानता की श्रेणी प्रदान नहीं की जा सकती।''[2] यह सही है कि दलित समाज की दयनीय स्थिति के लिए उनकी आर्थिक विपन्नता ही जिम्मेदार है। अतः जब तक आर्थिक अभाव की समस्या हल नहीं होगी तब तक पूँजीपति लोग दलित समाज का आर्थिक शोषण करते रहेंगे।

दलित समाज आर्थिक दृष्टि से सक्षम होने के लिए उनमें रोजगार उपलब्ध कराने पर सरकार जोर दे रही है। आजकल देहातों में 'प्रधानमंत्री ग्राम स्वयंरोजगार' जैसी योजनाएँ कार्यान्वित हो रही हैं। शिक्षा का प्रचार दलित समाज में होने के कारण धीरे-धीरे यह समाज अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया है।

अतः यह स्पष्ट है कि समाज में व्यक्ति का स्तर आर्थिक स्थिति पर निर्भर होता है, परंतु आर्थिक विपन्नता, रोजगार की समस्या के कारण समाज के विभिन्न वर्गों में आर्थिक

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 187
2. डॉ. वाय. बी. धुमाल - साठोत्तरी हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों में का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ - 214

समस्याएँ बढ़ती ही जा रही हैं। दलित समाज अज्ञानी एवं अंधविश्वासी होने की वजह से नए-नए रोजगार के अवसरों का लाभ नहीं उठा पाता। उच्च वर्ग हमेशा से दलितों को दबाता आ रहा है। आर्थिक विपन्नता के कारण दलितों को समाज के उच्चवर्गों का सहारा लेना पड़ता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'धरती धन न अपना' उपन्यास भारतीय दलित समाज के यथार्थ का दस्तावेज है। दलितों को न ही रहने के लिए और जोतने के लिए अपने मल्कियत की जमीन नहीं है। भूमिहीन दलित मजदूरों के रूप में सदियों से जी रहे हैं। लेखक जगदीशचंद्र ने आर्थिक अभावों में जी रहे दलितों का एकमात्र कारण अज्ञान एवं अंधविश्वासी होना बताया है। ज्ञान का प्रसार होने से तथा विभिन्न रोजगार के अवसरों का लाभ उठाकर दलित लोगों ने अपना विकास करना चाहिए। आजकल सरकार भी आरक्षण तथा रोजगार-स्वयंरोजगार के माध्यम से दलित समाज को आर्थिक स्थैर्य देने का प्रयास कर रही है।

4.2.3 धार्मिक समस्याएँ -

धर्म को भारतीय समाज का आधार माना गया है। वर्णाधिष्ठित समाज व्यवस्था में कर्म के आधार पर जाति की निश्चिती हुई। उसी प्रकार मानवी समाज में विशिष्ठ व्यक्ति समुदायों ने अपने हित संबंधों को लेकर विभिन्न धर्मों का निर्माण किया। धर्म को परिभाषित करते हुए स्वामी कटुस्थानंद कहते हैं- ''धर्म का मतलब है जो सारे संसार को धारण करता है। सारे संसार का भरण-पोषण करता है। हम परमात्मा को ही धर्म मानते हैं। यों भी धर्म शब्द के आदि में कोई भी शब्द नहीं जोड़ा जाता। यदि आदि में कोई शब्द जोड़ देंगे तो वहाँ धर्म संकुचित हो जाएगा। जैसे हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म आदि।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि धर्म मानव समाज को नियंत्रित करने की शक्ति है। व्यक्ति धर्म के नियमों का पालन ईश्वर प्राप्ति के लिए करता था, परंतु धीरे-धीरे धर्म का वास्तविक रूप नष्ट होता गया।

हिंदू, मुस्लिम, सीख्ख, ईसाई आदि धर्मों के लोग अपने धर्म द्वारा निर्धारित नीति-नियमों का पालन करते हैं तथा उसी के अनुसार आचरण करते हैं। 'व्यावहारिक हिंदी

---

1. स्वामी कटुस्थानंद - नवभारत टाइम्स-स्वर्ण जयंती वर्ष विशेषांक, पृष्ठ - 20, जून - 1999

कोश' के अनुसार, ''धर्म नैतिक कर्तव्यों और नियमों की वह पद्धति है, जिसके पालन से व्यक्ति लोक और परलोक दोनों में यश और पुण्य का लाभ करता है।''[1] इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक आचरण से जीवन में शांति और सफलता मिलती है।

आज समाज में धर्म को अनन्य साधारण महत्त्व को प्राप्त हुआ है। मनुष्य जीवन में धर्म के महत्त्व के बारे में डॉ. अर्जुन चव्हाण के विचार दृष्टव्य हैं- ''हमारा समाज शुरू से ही धार्मिकता से प्रेरित रहा है, क्योंकि धर्म के बिना मनुष्य महज पशु है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन मनुष्य और पशु में समान है, किंतु धर्म के पालन से मनुष्य पशु से उच्चतर प्राणी सिद्ध होता है।''[2] यह सही है कि धर्म के कारण मनुष्य अन्य प्राणियों से अलग हुआ है। धर्म के नियमों का पालन व्यक्ति जी-जान से करता है।

आधुनिक काल में धर्म अपनी वास्तविक स्थिति से दूर गया हुआ नजर आता है। लोग धर्म के वास्तविक अर्थ को भूल गए हैं। धर्म के नाम पर समाज में दंगा-फसाद हो रहे हैं। कुछ एक स्वार्थी लोग धर्म का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए कर रहे हैं। जिससे सामाजिक अशांति निर्माण होती है। हर एक धर्म में धार्मिक कर्मकांड फैले हुए हैं।

अशिक्षा, अज्ञान के कारण ग्राम जीवन में धर्म के नाम पर पंडित, पुरोहित, मुल्ला-मौलवी निम्न जातियों के लोगों का शोषण करते हैं। अपने लाभ के लिए धर्म के ठेकेदार ही भय दिखाते हैं कि यदि जन्म-मृत्यु, शादी-ब्याह, तीज-त्यौहार पर धार्मिक आचरण नहीं किया तो देवता तुम पर क्रुद्ध हो जाएगा और तुम्हारी हानी हो जाएगी। इस प्रकार के अपप्रचार धर्म के नाम पर समाज में किए गए हैं। अतः निम्नजातियाँ और जनजातियाँ उच्च वर्ग के अत्याचार तथा कठोर धार्मिक बंधन से तंग आकर मजबूरन धर्मांतर कर रही हैं। कभी-कभी अर्थाभाव से त्रस्त होकर भी निम्न जाति के हिंदू अपना धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं। धर्म के विकृत रूप ने समाज में धर्म परिवर्तन, जाति-भेद, ऊँच-नीच, सांप्रदायिकता आदि समस्याएँ निर्माण हुई हैं।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने विभिन्न धार्मिक समस्याओं का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित धार्मिक समस्याएँ इस प्रकार हैं-

---

1. सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी - व्यावहारिक हिंदी कोश, पृष्ठ - 165-166
2. डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृष्ठ - 142

4.2.3.1 जातिभेद -

भारतीय समाज व्यवस्था का मूल आधार चातुर्वर्ण्य सामाजिक व्यवस्था है। इस व्यवस्था के कारण समाज ब्राह्मण क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्गों में विभाजित हुआ। हर एक वर्ग की व्यवसाय के आधार पर जाति निश्चित हुई। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, उच्च जाति के और शूद्रों को निम्न जाति के समझा जाने लगा। जिससे समाज में उच्च जाति और निम्न जाति के लोग यह भेदाभेद प्रचलित रहा। जाति-जाति में चल रहे भेदाभेद के संदर्भ में डॉ. मुक्ता नायडू का कहना है कि ''मानव-मानव में भेद करके असंख्यों समस्याओं को जन्म देनेवाली वर्णाश्रम व्यवस्था और उसका पालन वास्तव में भारतीय समाज के लिए दुर्भाग्य की वस्तु रही है।''[1] अतः उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि वर्णाश्रम व्यवस्था एक ऐसी गंदी समाज व्यवस्था है जो मानव-मानव में भेदाभेद निर्माण करती है।

जातिभेद के कारण समाज की अधोगति हो रही है। देहातों तथा महानगरों में भी कहीं-कहीं पर जातिभेद का पालन किया जाता है। राजनीति में भी विभिन्न दल जाति का सहारा लेकर वोटों की गंदी राजनीति करते हैं। हर एक जाति का गुट अपनी जाति को ज्यादा अधिकार मिले इसकी कोशिश करता है। जिससे समाज में जातीयता तथा सांप्रदायिकता की समस्याएँ उपस्थित होती हैं। ''जो व्यक्ति जिस जाति का सदस्य है, वह परंपरागत रूप में अपनी जातियों के ही व्यक्तियों को, जिन्हें वह अपना जाति-भाई मानता है, यथासंभव सहायता, रक्षा अथवा नैतिक एवं भौतिक बल प्रदान करना अपना कर्तव्य समझता है।''[2] जाति का प्रभाव समाज में इतना है कि इसके विरोध में जाने का विचार भी कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। जाति में अनेक उपजातियाँ होती हैं और इन उपजातियों में भी हर एक समूह अपनी जाति को श्रेष्ठ समझता आया है। डॉ. जोत्सना शर्मा के मतानुसार- ''लोग जाति-पाति का ध्यान अभी तक इतना रखते हैं कि गरीब से गरीब व्यक्ति भी इसके पालन में अपने पर गर्व करता है।''[3] उक्त कथन से समाज का जाति के प्रति व्यवहार का ज्ञान होता है।

---

1. डॉ. मुक्ता नायडू - इलाचंद्र जोशी का कथा-साहित्य : शिल्प एवं संवेदना, पृष्ठ - 106
2. सं. मोटुरि संत्यनारायण - विश्वज्ञान संहिता, पृष्ठ - 267
3. डॉ. जोत्सना शर्मा - शिवानी का हिंदी साहित्य : सामाजिक परिप्रेक्ष्य में, पृष्ठ - 115

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने पंजाब प्रांतीय समाज में स्थित जातिभेद का चित्रण किया है। पंजाब प्रांत में घोड़ेवाहा जैसे देहातों में उच्च वर्ग और दलित वर्ग में जाति के नाम पर भेदाभेद किया जाता है। दलितों को निम्न समझकर मंदिर प्रवेश बंद तथा दलितों की परछाई से भी उच्च वर्ग परहेज रहता है। यहाँ तक कि गाँव का दूकानदार मुंशी छज्जूशाह दलितों के साथ जातीय भेदाभेद बरतता है। एक दिन दलित युवक काली दूकान पर बैठकर छज्जूशाह से हुक्का पीने के लिए माँगता है। इसपर दूकानदार छज्जू शाह कहता है कि "मैने अपने हुक्के के अलावा दो हुक्के और भी रखे हुए थे, एक जाटों के लिए और दूसरा चमारों के लिए।"[1] उक्त कथन से जातिभेद समस्या पर प्रकाश पड़ता है।

गाँव में जाति-उपजातियों में भी भेदाभेद का पालन किया जाता है। चामर, कुम्हार, नाई, दर्जी, भंगी आदि उपजातियों में भी आपसी भेदाभेद रहता है। मिस्तरी संतासिंह काश्तकार है। वह गाँव के लोगों को कृषि संबंधी विभिन्न लकड़ी की वस्तुएँ बनाकर देता है। इस बदले में संतासिंह को गाँव के लोग अनाज देते हैं। संतासिंह काली का पक्का मकान बनाने के लिए लेन-देन के बारे में कहता है- "हम जहाँ काम करते हैं, दोपहर की रोटी और शाम की चाय वहीं खाते-पीते हैं। तेरे घर में तो रोटी खा नहीं सकता, इसलिए तुम रोटी चाय के नगद पैसे अलग से देना।"[2] इस कथन से स्पष्ट होता है कि काली चमार होने के कारण मिस्तरी संतासिंह काली के यहाँ चाय-पानी तो क्या रोटी भी नहीं खाता। संतासिंह चमार जाति को काश्तकार से भी कम आँकता है।

हर एक व्यक्ति की जाति उसके जन्म से ही निर्धारित होती है। मृत्यु के बाद ही व्यक्ति की जाति नष्ठ होती है। अगर व्यक्ति धर्म-परिवर्तन या अन्य व्यवसाय करता है फिर भी उसकी जाति नहीं बदलती। नन्दसिंह चमार ईसाई धर्म स्वीकारता है फिर भी वह चमार ही रहता है। नन्दसिंह के धर्म-परिवर्तन करने पर चौधरी मुंशी कहता है- "जात कर्म से नहीं, जन्म से बनती है।"[3] अतः कहना सही होगा कि जाति के बंधनों का आज भी कड़ाई से पालन किया जाता है। जातिभेद के कारण दलित समाज अपने अधिकारों से वंचित रहा है।

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 38
2. वही, पृष्ठ - 95
3. वही, पृष्ठ - 200

4.2.3.2 धर्म-परिवर्तन -

धर्म-परिवर्तन की समस्या भारतीय समाज में नई नहीं है। मुस्लिम शासनकाल से भारतीय समाज में धर्म-परिवर्तन शुरू हुए। मुस्लिम शासकों ने तलवार के बल पर हिंदुओं को मुस्लिम धर्म स्वीकारने के लिए बाध्य किया था। ऐसे में हिंदू धर्म को पुर्नजीवित रखने का प्रयास आर्य समाज, ब्राह्मो समाज, प्रार्थना समाज आदि द्वारा हुआ, परंतु धीरे-धीरे हिंदू धर्म में बाह्याडंबर एवं कर्मकांड को महत्त्व दिया जाने लगा। जिससे सामान्य लोगों का शोषण होने लगा। हिंदू धर्म के इस रूप से परेशान होकर तथा अर्थाभाव से त्रस्त होकर भारतीय समाज का निम्न वर्ग अपने धर्म को त्यागकर अन्य धर्म स्वीकारने लगा।

स्वातंत्र्योत्तर काल में यह धर्मांतर की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। सन् 1956 में डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने हिंदू धर्म में फैले कर्मकांड के विरोध में अपने सहस्त्रो अनुयायियों के साथ धर्म-परिवर्तन किया। बौद्ध धर्म का स्वीकार करने से दलित समाज की समस्याएँ थोड़ी-बहुत मात्रा में कम हुई। परंतु महामानव डॉ. बाबासाहब आंबेडकर की मृत्यु के पश्चात् भारतीय दलित समाज को सक्षम नेतृत्व नहीं मिला। अतः धर्म-परिवर्तन के बाद भी दलित समाज की समस्याएँ वैसी-की-वैसी रही। यह धर्म-परिवर्तन की असफलता मानी जाएगी।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने हिंदू धर्म में फैले पाखंड, बाह्याडंबर तथा धर्म-परिवर्तन के बाद की स्थिति का यथावत अंकन किया है। धर्म-परिवर्तन हमेशा से निम्न वर्ग ही करता आया है। धर्म-परिवर्तन की समस्या अन्य धर्मों की अपेक्षा हिंदू धर्म में ही सबसे अधिक है। नन्दसिंह चमार हिंदू धर्म से तंग आकर ईसाई बनता है। इसपर पंडित संतराम कहता है- "कभी किसी दूसरे धर्मवाले को अपना धर्म बदलते हुए सुना है ? धर्म जब भी बदलता है तो हिंदू ही बदलता है, क्योंकि उसे अपने धर्म-कर्म पर विश्वास नहीं रहा।"[1] इस कथन से हिंदू धर्म के प्रति लोगों की उदासीनता स्पष्ट होती है। यह सच्चाई है कि आज तक केवल हिंदू धर्म के निम्न वर्ग ने ही धर्म-परिवर्तन किया है। धर्म के नाम पर पंडित, पुरोहित जैसे लोग सामान्य जनता को लूटते हैं, परंतु सवाल यह उठता

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 153

है कि धर्म-परिवर्तन से धार्मिक समस्या खत्म होगी ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं होगा। क्योंकि धर्म-परिवर्तन करने से उच्चवर्गीय समाज की मानसिकता में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। धर्म-परिवर्तन के बाद भी नन्दसिंह चमार को समाज दलित ही मानता है। चमार से सीख्ख और सीख्ख से फिर ईसाई धर्म में जाने के बाद भी नन्दसिंह चमार ही रहता है। न ही उसको समाज में प्रतिष्ठा मिलती है और न ही उकसा जूतों का पुराना व्यवसाय बंद हुआ है।

नन्दसिंह के धर्म-परिवर्तन को समाज मान्यता नहीं देता। डॉक्टर बिशनदास कहता है कि "धर्म बदलने से नन्दसिंह का क्लास कैरेक्टर नहीं बदलेगा। सब धर्म पाखंड हैं। हर धर्म मजबूर तबके के लिए अफीम है। अफीम काली हो या भूरी, उससे क्या फर्क पड़ता है।"[1] यह कहना सही होगा कि आज हर धर्म अपने वास्तविक नीति-नियमों से ढह चुका है। धर्म अफीम की तरह समाज में फैला है। अतः धर्म बदलने से व्यक्ति का सामाजिक स्तर कभी नहीं बदल सकता।

धर्म-परिवर्तन की समस्या आज भी समाज के सामने खड़ी है। भारत को धर्म-निरपेक्ष गणराज्य का दर्जा दिया गया है। फिर भी कुछ धार्मिक कुप्रवृत्तियाँ सामान्य दलित वर्ग को बहकाकर धर्म-परिवर्तन के लिए उकसाते हैं, परंतु आज तक धर्म-परिवर्तन करने से किसी के जीवन में कितना लाभ हुआ होगा यह सोचने की बात है। अतः धर्म-परिवर्तन से कोई भी समस्या सुलझ नहीं जाएगी। लोगों को चाहिए कि धर्म के वास्तविक रूप को अपनाकर उसी के अनुसार अपना आचरण करना चाहिए।

4.2.3.3 ऊँच-नीच की समस्या -

प्रारंभिक भारतीय समाज वर्ण एवं जाति आधारित था। समाज का विभाजन चार वर्णों में हुआ था। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य एवं सबसे निम्न वर्ग शूद्र माना जाता था। ब्राह्मण वर्ग स्वयं को उच्च समझता था। शूद्र वर्गों के लोगों को समाज में रहते हुए बूरे एवं गलिच्छ काम करने पड़ते थे। ऊपर के तीनों वर्गों की दृष्टि से शूद्र वर्ग नीच या निम्न समझा जाता था। अतः इस वर्ण व्यवस्था के कारण समाज में ऊँच-नीच का भेदाभेद किया जाता था। चाहे वह अपने ही धर्म के लोग क्यों न हो। डॉ. कृष्णकुमार सिंह लिखते हैं- "वर्ण

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 153

और वर्ग के संबंध पर विचार करने पर हम पाते हैं कि प्राचीन काल से दोनों का गहरा संबंध है। वर्ण व्यवस्था असमानता पर आधारित थी। उसमें ऊँच-नीच का भेद था वह संपत्ति के कारण। जिसके पास अधिक संपत्ति थी वह श्रेष्ठ माना गया और जिसके पास कम संपत्ति थी वह हीन माना गया।''[1] यह कथन सही है कि हरेक धर्म में व्यक्ति को आर्थिक स्थिति से ऊँच-नीच समझा जाता है। चाहे वह हिंदू धर्मीय ही क्यों न हो। यह धार्मिक ऊँच-नीचता समाज की एकता को नष्ट कर देती है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने हिंदू धर्म में फैली ऊँच-नीचता का चित्रण किया है। ब्राह्मण, चौधरी, जमींदार, साहूकार आदि उच्चवर्गीय समझे जाते थे। निम्न वर्ग में चमार, धोबी, लुहार, बढ़ई, नाई, तेली आदि जाति के लोगों को नीच समझा जाता था। इन निम्नवर्गीय लोगों के साथ गाँव के पंडित, पुजारी लोग संबंध नहीं रखते थे। घोड़ेवाहा गाँव का पंडित चमारों से तथा उनकी छाया से भी परहेज रहता है। संतासिंह नन्दसिंह चमार को निम्न समझता है। क्योंकि नन्दसिंह ने सिख धर्म का स्वीकार किया था। संतासिंह काश्तकार है। इसीलिए वह स्वयं को उच्च समझता है। दलित युवक काली से वह कहता है- ''तेरे घर में रोटी तो खा नहीं सकता, इसलिए तुम रोटी-चाय के नगद पैसे अलग दे देना। चार आने होंगे।''[2] इस कथन से स्पष्ट होता है कि संतासिंह और काली दोनों भी हिंदू धर्मीय हैं, परंतु उनमें आर्थिक स्थिति एवं जाति के कारण ऊँच-नीच का भेदाभेद माना जाता है।

बाढ़ के समय दलित स्त्रियाँ पादरी के यहाँ पीने का पानी लाने जाती हैं, परंतु वहाँ पर चमादड़ी की स्त्रियों को नीच समझकर पादरी तथा उसकी पत्नी वहाँ से भगाती हैं। गाँव के पंडित संतराम ने भी इन लोगों को कुएँ पर पानी भरने नहीं दिया। समाज में चल रहे ऊँच-नीच भेदाभेद से चमादड़ी के लोग परेशान एवं पीड़ित थे।

धर्म के नाम पर किया जा रहा ऊँच-नीच का भेदाभेद अन्य धर्मों में भी दिखाई देता है। जिस प्रकार मुस्लिम धर्म में भी सिया और सुन्नी इन दो वर्गों में ऊँच-नीच का भेदा-

---

1. डॉ. कृष्णकुमार सिंह - संत काव्य के विकास में वर्ण, जाति और वर्ग की भूमिका, पृष्ठ - 41
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 95

भेद दिखाई देता है। समाज में फैले इस ऊँच-नीच भेदा-भेद के कारण सामान्य दलित लोगों का जिना मुश्किल हो जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि समाज मे धर्म का प्राबल्य होने के कारण सामान्य जनता धार्मिक नियमों का उल्लंघन करने से डरती थी। लोगों के इसी डर का लाभ उठाकर पंडित-पुरोहित, मुल्ला-मौलवी लोगों को लूटते रहते थे। प्रत्येक धर्म में फैले बाह्याडंबर एवं कर्मकांड से निम्नवर्गीय दलित समाज पीड़ित था। धर्म के नाम पर भेदा-भेद चरम अवस्था पर होने के कारण लोगों का अपने धर्म-कर्म पर विश्वास नहीं रहा। जिससे धर्म-परिवर्तन की समस्या बढ़ने लगी। स्वातंत्र्योत्तर काल में धर्म-परिवर्तन की समस्या दलित समाज में बड़ी मात्रा में दिखाई देती है।

अतः लेखक जगदीशचंद्र ने धर्म के नाम पर दलित समाज की हो रही दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। दलित समाज के लोग हिंदू धर्म को त्यागकर अन्य धर्मों का स्विकार करते थे, परंतु धर्म-परिवर्तन से दलितों पर हो रहा धार्मिक अन्याय कम नहीं होता है। लेखक जगदीशचंद्र ने नन्दसिंह चमार के माध्यम से धर्म-परिवर्तन की समस्या का चित्रण किया है। लेखक के अनुसार धर्म-परिवर्तन से व्यक्ति के स्तर में कोई फर्क नहीं पड़ता। अतः व्यक्ति को चाहिए कि वह अपना अज्ञान दूर कर भेदाभेद रहित समाज का निर्माण करें। धर्म का स्थान केवल व्यक्तिगत होना आवश्यक है।

4.2.4 राजनीतिक समस्याएँ -

स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज के सभी वर्गों में राजनीतिक चेतना दिखाई देती है। गाँव-गाँव, गली-गली ऐसा कोई भी क्षेत्र राजनीति से अछूता नहीं रहा। गाँव के पंचायत से लेकर देश की शासन-संस्था तक राजनीति फैली हुई है। इस संदर्भ में विश्वंभरदयाल गुप्त के विचार दृष्टव्य है- "भारतीय गाँव जहाँ देश की अधिकांश जनसंख्या निवास करती है। देश की राजनीति एवं शासन तंत्र को प्रभावित करनेवाली एक महत्त्वपूर्ण इकाई बन गई है। राजनीति में गाँव की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।"[1] यह सही है कि गाँव का हर एक व्यक्ति

---

1. विश्वंभरदयाल गुप्त - ग्रामीण समाजशास्त्र : साहित्य परिप्रेक्ष्य में, पृष्ठ - 83

पंचायत से लेकर राजनीति से जुड़ा है, परंतु आजकल राजनीति में लोगों को केवल वोटों का धनी माना जाता है। राजनीति का लाभ केवल नेता लोग अपने स्वार्थ के लिए कर रहे हैं।

आधुनिक काल में राजनैतिक मूल्यों को राजनेता लोग तिलांजली दे रहे हैं। जिसकी वजह से आम आदमी को परेशानी उठानी पड़ती है। अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, जातीय भेदाभेद आदि का राजनीति में इस्तेमाल हो रहा है। राजनीति में फैले स्वार्थ के कारण शासन यंत्रणा पूरी तरह ढह चुकी है। विभिन्न दल, संगठन राजनीति में स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में लगे हुए हैं। जाति, धर्म का आधार लेकर विभिन्न संगठन अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। आज केवल वोटों की राजनीति रह गई है। चुनाव के समय मतदाताओं को रिश्वत देना, गलत नीति को अपनाकर मत-पत्रिकाएँ चुराना, निर्वाचन अधिकारियों को रिश्वत देकर अपने दल एवं संगठन को जीत दिलाना आदि हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। भारत में लोकतंत्रीय शासन संस्था का पतन राजनीतिक समस्याएँ बढ़ने के कारण हो रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में स्वार्थी राजनीति के कारण लोगों का मोहभंग हुआ है। सरकारी अफसर, पुलिस, नेतालोग आदि पर से जनता का विश्वास धीरे-धीरे कम होने लगा है। धर्म का आधार लेकर हिंदू-मुस्लिम झगड़ों से देश में अशांति फैली हुई है। अवसरवादी नेता लोग हिंदू-मुस्लिम दंगा-फसाद का अपनी गंदी राजनीति के लिए लाभ उठाते नजर आते हैं।

भारतीय राजनीतिक मोहभंग के कारण निर्माण स्थिति का यथावत चित्रण आधुनिक काल में साहित्यकारों ने अपने साहित्य में किया है। लोकतंत्र का पर्दाफाश करते हुए आम आदमी की पीड़ा को प्रमुखता दी जा रही है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने देहातों में फैली गंदी राजनीति तथा अवसरवादी नेताओं का पर्दाफाश किया है। राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण पूरा समाज एक कगार पर खड़ा है। देश के राजनीतिक पतन को रोकने का प्रयास साहित्य के माध्यम से हो रहा है। आलोच्य उपन्यास में स्वार्थी राजनीति के कारण अनेक समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। वह निम्न प्रकार हैं-

4.2.4.1 भ्रष्टाचार -

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश में विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हुई। एक महासत्ता के रूप में भारत प्रगतीशील रहा है। ऐसे में बढ़ती आबादी, बेरोजगारी, गरीबी आदि सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ राजनीतिक समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। भ्रष्टाचार जैसी समस्या ने पूरे देश की प्रशासन की नींव हिला दी है। आज यह कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार राजनीति का अंग बन गया है। लोग अपने पद, ओहदे का दुरूपयोग करके अवैध धन इकठ्ठा कर रहे हैं, परंतु भ्रष्टाचार से आम जनता आतंकित है। भ्रष्टाचार के संदर्भ में डॉ. चमनलाल गुप्ता के विचार दृष्टव्य हैं- ''भ्रष्टाचार का अर्थ अपने बल पर अथवा शक्ति के दबाव में अनुचित काम करवाना, सत्ता एवं सामर्थ्य का दुरूपयोग करवाना है।''[1] यह सही है कि आजकल सत्ता एवं सामर्थ्य के बल पर आम जनता को लूट लिया जा रहा है। भ्रष्टाचार शिष्ठाचार हो गया है। चपरासी से लेकर बड़े-बड़े ओहदेवाले अफसरों तक भ्रष्टाचार फैला हुआ है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने देहातों में फैले भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। घोड़ेवाहा गाँव के दलित अज्ञान एवं अंधविश्वास के कारण पिछड़े हुए हैं। उनमें किसी भी प्रकार की राजनीतिक चेतना दिखाई नहीं देती। गाँव पंचायत के समय उन्हें बोलने का अधिकार नहीं है। काली और निक्कू चमार के झगड़े में घड्ड़मसिंह पंच के रूप में न्याय देते हुए रिश्वत की माँग करता है। जमीन नापने की फीस का बहाना बनाकर दो रुपए रिश्वत लेता है। घड्डम चौधरी कहता है- ''वैसे तो इस काम की कोई फीस नहीं है। लेकिन अगर फीस न हो तो पटवारी को कभी जरीब नहीं मिलती और कभी नक्शा खो जाता है।''[2] इस कथन से स्पष्ट होता है कि बिना रिश्वत दिए कोई भी काम नहीं होता। डाक विभाग के कार्यालयों में चौधरी मुंशी जैसे सरकारी अफसर महसूल के नाम पर काली से रुपए हड़प लेना चाहते हैं। चौधरी मुंशी के भ्रष्टाचार के संदर्भ में डॉक्टर बिशनदास के विचार दृष्टव्य हैं- ''जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है उसी तरह बड़ा तबका छोटे तबके को एक्सपलायट करता है। यानी उसकी मेहनत का फल उसे खाने नहीं देता बल्कि खुद

---

1. डॉ. चमनलाल गुप्त - यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य, पृष्ठ - 118
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 87

खा जाता है।''[1] स्पष्ट है कि पूँजीपति वर्ग पैसा एवं सत्ता के बल पर दलितों के अज्ञान, अंधविश्वास का लाभ अपने स्वार्थ के लिए उठाते हैं।

आम आदमी के अज्ञान का लाभ पूँजीपति एवं राजनेता लोग उठाते समय जनता का संगठन नहीं होने देता। डॉक्टर बिशनदास कहता है- ''पूँजीपति यह कभी नहीं चाहते कि मजदूरों में एकता हो। मुतवाजी युनियन बनाना भी एक एम्पीरियलिस्ट चाल है, मजदूरों के इत्तहाद को तोड़ने की।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि पूँजीपति लोग समाज में एकता या संगठन नहीं होने देते। कभी-कभी इन संगठनों से राजनीतिक लाभ उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। हर जगह स्वार्थ देखा जाता है। स्वार्थी वृत्ति के कारण अज्ञानी, अंधविश्वासी दलित समाज के लोग पीड़ित हैं। न ही उनमें राजनीतिक चेतना है और न ही वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत। सदियों से दबे हुए, असंघटित अन्याय-शोषण को झेलते रहे दलित समाज में भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने की शक्ति नहीं है। अतः जब तक भ्रष्टाचार खत्म नहीं होता तब तक आम आदमी का आर्थिक शोषण होता रहेगा।

भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने के लिए सबसे पहले स्वार्थी वृत्ति में बदलाव लाना आवश्यक है। शिक्षा के प्रसार से दलित समाज में अपने अधिकारों की जानकारी मिलेगी। राजनीति में फैले भ्रष्टता को दूर कर स्वयं राजनेताओं ने नैतिक मूल्यों का पालन करना चाहिए। जिससे भ्रष्टाचार नष्ठ हो जाए।

4.2.4.2 अवसरवादी नेतालोग -

समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अवसर का लाभ उठाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। अवसरवादी वृत्ति के कारण आजकल विभिन्न राजनीतिक दल संगठन विभाजित हो रहे हैं। राजनीतिक अवसरवादिता के कारण आम आदमी का लोकतंत्र शासन-व्यवस्था पर विश्वास नहीं रहा है।

राजनेता लोग किसी दल या संगठन के एक अविभाज्य अंग होता है, परंतु आज भ्रष्ट राजनीति के कारण दलबदलू नेताओं की कमी नहीं है। राजनीति में कुछ लोग ऐसे

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 144
2. वही, पृष्ठ - 112

होते हैं जो आम आदमी के अज्ञान का लाभ 'वोट बैंक' के रूप में करते हैं। समाज में धर्म-जाति के आधार पर झगड़ा करवाकर अवसरवादी नेतालोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में डॉ. बिशनदास ऐसा पात्र है जो दलितों के अज्ञान एवं अंधविश्वास का लाभ उठाकर उच्च वर्ग और दलित वर्ग में संघर्ष करना चाहता है। डॉक्टर बिशनदास मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित है। वह दलितों में मार्क्सवादी विचारों को फैलाना चाहता है। घोड़ेवाहा गाँव के चौधरी जमींदारों के साथ दलितों ने हड़ताल शुरू की थी। डॉक्टर बिशनदास काली तथा दलित समाज के युवकों को इकठ्ठा करके मार्क्सवादी विचारों के जरिए वर्ग-संघर्ष से क्रांति लाना चाहता है, परंतु डाक्टर बिशनदास डरता है कि कहीं इस झगड़े में उसका भी नाम लिया जाए। "डॉक्टर चाहता है कि घोड़ेवाहा के चमारों के वर्ग-संघर्ष का नेतृत्व पार्टी के हाथ में आ जाए। वह स्वयं इसलिए सामने नहीं आना चाहता था क्योंकि उसके अपने गाँव का मामला था।"[1] यहाँ स्पष्ट होता है कि डॉक्टर बिशनदास अवसरवादी नेता है। वह अपना स्वार्थ देखता है। न कि वह किसी झगड़े में पड़ना चाहता है।

बायकाट में चमादड़ी के दलितों की स्थिति दयनीय होती है। दिन-ब-दिन खाने के लाले पड़ जाते हैं। अतः अन्न की समस्या से छुटकारा पाने के लिए काली पादरी तथा लालू पहलवान के सामने मदद माँगता है। दोनों की असमर्थता पर काली निराश होकर डॉक्टर बिशनदास के पास जाता है। डॉक्टर बिशनदास को इन दलितों से कोई लेना-देना नहीं था। बायकाट के समय दलितों की अन्न की समस्या सुलझाने के बजाय उनमें जलसों से जाग्रति करने का खयाल डॉक्टर बिशनदास के मन में आता है। मार्क्सवादी पार्टी के विचार दलितों के मन में उतारकर डॉक्टर बिशनदास अपनी पार्टी की मजबूती चाहता है। बिशनदास को चमादड़ी के दलितों की भूख से बेहाल दयनीय स्थिति का थोड़ा भी दुःख नहीं होता। अतः काली निराश होकर कहता है- "मुझे उम्मीद थी कि डॉक्टर हमारी कुछ मदद करेगा। वह रोज कहता है कि वह गरीबों के पक्ष में है। उनसे अनाज माँगा तो उसने जवाब दिया कि वह हमारे हक में जलसा करेगा। वह बहुत लंबी-चौड़ी बातें करता है जो मेरी समझ में नहीं आती।"[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि डॉक्टर बिशनदास केवल अपने स्वार्थ को देखता

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 241
2. वही, पृष्ठ - 258

है। डॉक्टर बिशनदास से कुछ मदद मिलेगी यह काली की उम्मीद नष्ट हो जाती है। यहाँ पर डॉक्टर बिशनदास की अवसरवादिता दिखाई देती है।

आज राजनीति को अवसरवादी प्रवृत्ति हानिकारक सिद्ध हो रही है। राजनेता लोग अवसर का लाभ उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। अवसरवादिता के कारण आम आदमी पीड़ित है। अवसरवादी लोग दलित समाज के अज्ञान एवं अंधविश्वास का लाभ अपने स्वार्थ के लिए उठाकर लूटते रहते हैं। अपने स्वार्थ को महत्त्व न देकर समाजहित सर्वश्रेष्ठ मानकर राजनीति में आम आदमी के सुख-दुःख का विचार होना आवश्यक है। अवसरवादी वृत्ति समाज के लिए अहितकारक है। अतः व्यक्ति तथा राजनेता लोगों को चाहिए कि वे निस्वार्थ भावना से अपना कर्तव्य करें। तभी समाज का कल्याण हो सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने राजनीति की समस्याओं को यथावत अंकन किया हुआ है। आज भ्रष्टाचारी वृत्ति के कारण समाज का हर एक व्यक्ति पीड़ित है। अतः भ्रष्टाचार की समस्या गली से लेकर दिल्ली तक अपनी जड़ें फैला चुकी है। सरकारी-गैर सरकारी कार्यालय भ्रष्टाचार के अड्डे बने हुए हैं। भ्रष्टाचार शिष्टाचार माना जा रहा है। राजनीति में अवसरवादी प्रवृत्ति हानिकारक है। जिसकी वजह से दलबदलू राजनेताओं की हमारे देश में कमी नहीं है। जनता जाए भाड़ में, हमें क्या करना ? इस मनोवृत्ति के कारण राजनीतिक माहौल गंदगी से भरा पड़ा है।

अतः दलितों में राजनीतिक चेतना जगाने का प्रयास आलोच्य उपन्यास में हुआ है। दलित युवक काली अपने अधिकारों को पहचानकर गाँव के चौधरियों के साथ बायकाट करता है, परंतु भ्रष्टाचार तथा डॉक्टर बिशनदास की अवसरवादिता के कारण उच्चवर्गियों के साथ सांझी करनी पड़ती है। यह एक प्रकार से काली जैसे दलित युवक के विद्रोह का पराजय माना जाएगा। आज भी दलित समाज के युवकों को काली की तरह ही अपने अरमानों को दफनाना पड़ता है। यह आज की राजनीति की पराजय मानी जाएगी।

निष्कर्ष -

भारतीय समाज व्यवस्था में विभिन्न वर्गों का उदय हुआ। इन वर्गों के कारण समाज का विभाजन उच्चवर्गीय समाज और निम्नवर्गीय दलित समाज में हुआ। उच्चवर्गीय मानसिक प्रवृत्ति के लोगों द्वारा दलित समाज पर अन्याय-अत्याचार एवं शोषण होता आ रहा है। इसी वजह से दलित समाज में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिवेश में विभिन्न समस्याएँ निर्माण हुई। अज्ञानी एवं अंधविश्वासी समाज सदियों से सामाजिक स्तर से पिछड़ गया दिखाई देता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने केवल पंजाब के दलित समाज की समस्याओं को चित्रित किया है ऐसा कहना कठिन है। पूरे भारतीय समाज के दलित लोगों की यथार्थ तस्वीर आलोच्य उपन्यास में प्रतिबिंबित होती है। ग्रामीण क्षेत्र में आज भी उच्चवर्गीय दलित समाज को अपनी संपत्ति मानते हैं। अपना रोब जताने के लिए मारपीट, गालियाँ देना आदि से दलित लोगों का शोषण करते हैं। अज्ञान एवं अंधविश्वासी दलित समाज का लाभ उठाकर पूँजीपति वर्ग उन्हें लूटता रहता है। कभी-कभी उच्चर्गीय लोग दलित स्त्रियों की असहायता का लाभ उठाकर अवैध यौन-संबंध रखते हैं। दलितों का सामाजिक स्तर अत्यंत निम्न रहने से विवाह की समस्या निर्माण हो जाती है। अज्ञान में लिप्त दलित समाज में स्त्री-भ्रूण हत्या का स्वरूप भयावह है। स्त्री-भ्रूण हत्या के कारण पूरे विश्व में स्त्री-पुरुश प्रमाणता की समस्या खड़ी है। दिन-ब-दिन दलितों की सामाजिक समस्याएँ बढ़ती ही जा रही हैं।

आर्थिक अभावों से भरा जीवन दलितों को असहनीय हुआ है। अज्ञान के कारण रोजगार के नए-नए अवसर का लाभ उठाने की योग्यता दलितों में नहीं है। गाँव के जमींदार, चौधरी आदि के यहाँ सदियों से दलित काम करते आए हैं। बढ़ती आबादी के कारण रोजगार की समस्या पूरे विश्व के समाने खड़ी है। दलितों की आर्थिक स्थिति जमींदारों पर निर्भर है। ऐसे में डर के मारे दलित लोग स्वयं पर हो रहे अन्याय के खिलाफ नहीं जा सकते। सदियों से अन्याय-शोषण को सहते आए हैं। इसका कारण दलितों की आर्थिक स्थिति है। दलितों को विभिन्न आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ दलित समाज में जातिभेद, धर्म-परिवर्तन, ऊँच-नीच आदि का भी प्रभाव रहा है। वर्णाधिष्ठित समाज में शूद्रों को दलित माना जाता है। दलित और समाज का उच्च वर्ग दोनों में जाति के आधार पर भेदाभेद किया जाता था। हिंदू धर्म में फैले बाह्याडंबर एवं कर्मकांड के कारण दलितों में धर्म-परिवर्तन की बाढ़-सी आयी, परंतु यह सोचने की बात है कि क्या धर्म-परिवर्तन से समस्या हल हो सकती है ? इसका उत्तर है- नहीं। धर्म-परिवर्तन से दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में नन्दसिंह ऐसा पात्र है जो धर्म-परिवर्तन के परिणाम भूगत रहा है। ऊँच-नीच समस्या तो समाज को कलंक के रूप में प्राप्त हुई है। अतः धार्मिक दृष्टि से दलित समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

राजनीतिक दृष्टि से भी यह समाज बहुत पिछड़ा है। भ्रष्टाचार, अवसरवादी नेता लोगों के कारण दलितों में राजनीतिक जाग्रति नहीं हो पाई। दलित समाज को डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के बाद सक्षम नेता नहीं मिला। अवसरवादी एवं स्वार्थी राजनेताओं के कारण दलितों को अपने अधिकारों से वंचित होना पड़ रहा है। भ्रष्टाचारी शासन व्यवस्था के कारण आम आदमी आतंकित है। स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनीति से आम आदमी का मोहभंग हुआ है। दलित समाज का प्रयोग आज 'वोट बैंक' के रूप में किया जा रहा है। यह लोकतंत्र शासन व्यवस्था की पराजय मानी जाएगी।

अतः निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि दलित समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक समस्याओं के लिए उनका अज्ञान एवं अंधविश्वास जिम्मेदार है। जब तक दलित समाज शिक्षित नहीं होता तब तक 'वोट बैंक ' के रूप में लोग इस्तेमाल करते रहेंगे। आज शिक्षा के प्रचार से सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न स्वयंरोजगारों का लाभ उठाकर दलित समाज अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर रहा है। आलोच्य उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने पूरे भारतीय दलित समाज में चेतना जगाने का प्रयास किया है। निश्चय ही दलितों की समस्याएँ कम हो रही हैं।